[३२] श्री देवेन्द्रस्तव (प्रकीर्णक)सूत्रम्

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

"देवेन्द्रस्तव" मूलं एवं छाया

[मूलं एवं संस्कृतछाया]

[आद्य संपादक: - पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म॰ सा॰]

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुन: संकलनकर्ता→ मुनि दीपरत्नसागर **(M.Com., M.Ed., Ph.D.)**

15/01/2015, गुरुवार, २०७१ पौष कृष्ण १०

jain_e_library's Net Publications

आगम (३२)	“गणिविद्या” - प्रकीर्णकसूत्र-९ (मूलं+संस्कृतछाया) ---------- मूलं [-] ----------
प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र - [३२], प्रकीर्णकसूत्र - [०९] “देवेन्द्रस्तव” मूलं एवं संस्कृतछाया **‘देवेन्द्रस्तव’ प्रकीर्णक(९)** श्रीआगमोदयसमितिग्रन्थोद्धारे, पूर्वमुद्रितग्रन्थाङ्कः–४५, अयं–ग्रन्थाङ्कः–४६. श्रुतस्थविरसूत्रितं । चतुःशरणादिमरणसमाध्यन्तं प्रकीर्णकदशकं (छायायुतम्) । प्रकाशकः—श्रीआगमोदयसमितेः कार्यवाहकः झवेरी–वेणीचंद सूरचंद । इदं पुस्तकं मोहमय्यां निर्णयसागरमुद्रणालये कोलभाटवीथ्यां–२६–२८ तमे गृहे रामचंद्र येसू शेडगेद्वारा मुद्रापयित्वा प्रकाशितम् । वीर सं० २४५३. विक्रम सं० १९८३. सन १९२७. [वेतनं रू. २–०–०.
	देवेन्द्रस्तव-प्रकीर्णकसूत्रस्य मूल “टाइटल पेज”

मूलांक:	गाथा:	पृष्ठांक:	मूलांक:	गाथा:	पृष्ठांक:	मूलांक:	गाथा:	पृष्ठांक
००१	मङ्गलं, देविंद-पुच्छा	००४	०११	भवनपति-अधिकार:	००५	०६७	वाणव्यंतर-अधिकार:	०१२
०८१	ज्योतिष्क-अधिकार:	०१४	१६२	वैमानिक-अधिकार:	०२५	२७४	ईषत्प्राग्भारपृथ्वी व सिद्धाधिकार	०३९
३०२	जिनऋद्धि, उपसंहार:	०४३	-----	----------	-----	-----		-----

['देवेन्द्रस्तव' - मूलं एवं संस्कृतछाया] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले "चतु:शरणादिमरणसमाध्यन्तं प्रकीर्णकदशकं" नामसे सन १९२७ (विक्रम संवत १९८३) में आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित हुई, संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब | इस प्रतमे १० प्रकीर्णक थे.

इसी प्रत को फिर से दुसरे पूज्यश्रीओने अपने-अपने नामसे भी छपवाई, जिसमे उन्होंने खुदने तो कुछ नहीं किया, मगर इसी प्रत को ऑफसेट करवा के, अपना एवं अपनी प्रकाशन संस्था का नाम छाप दिया. जिसमे किसीने पूज्यपाद् सागरानंदसूरिजी के नाम को आगे रखा, और अपनी वफादारी दिखाई, तो किसीने स्वयं को ही इस पुरे कार्य का कर्ता बता दिया और संपादकपूज्यश्री तथा प्रकाशक का नाम ही मिटा दिया |

✤ **हमारा ये प्रयास क्यों?** ✤ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले, **४५-आगम सटीक** भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है किन्तु लोगो की पूज्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरुप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक **स्पेशियल फोरमेट** बनवाया, जिसमे बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर **शीर्षस्थानमे** आगम का नाम, फिर मूलसूत्र या गाथा के क्रमांक लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा सूत्र या गाथा चल रहे है उसका सरलता से ज्ञान हो शके, बायीं तरफ **आगम** का **क्रम** और इसी **प्रत** का **सूत्रक्रम** दिया है, उसके साथ वहाँ **'दीप अनुक्रम'** भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके | हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए है, मगर प्रत में गाथा और सूत्रो के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ **कौंस [-]** दिए है और जहां गाथा है वहाँ **||-||** ऐसी **दो लाइन** खींची है या फिर गाथा शब्द लिख दिया है |

हमने एक अनुक्रमणिका भी बनायी है, जिसमे प्रत्येक अध्ययन आदि लिख दिये है और साथमें इस सम्पादन के पृष्ठांक भी दे दिए है, जिससे अभ्यासक व्यक्ति अपने चहिते अध्ययन या विषय तक आसानी से पहुँच शकता है | अनेक पृष्ठ के नीचे **विशिष्ठ फूटनोट** भी लिखी है, जहां उस पृष्ठ पर चल रहे ख़ास विषयवस्तु की, मूल प्रतमें रही हुई कोई-कोई मुद्रण-भूल की या क्रमांकन-भूल सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है |

अभी तो ये jain_e_library.org का 'इंटरनेट पब्लिकेशन' है, क्योंकि विश्वभरमें अनेक लोगो तक पहुँचने का यहीँ सरल, सस्ता और आधुनिक रास्ता है, आगे जाकर ईसि को मुद्रण करवाने की हमारी मनीषा है|

.....मुनि दीपरत्नसागर.....

आगम (३२)	"देवेन्द्रस्तव" - प्रकीर्णकसूत्र-९ (मूलं+संस्कृतछाया) ---------- मूलं [१]----------
प्रत सूत्रांक ॥१॥ दीप अनुक्रम [१]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र - [३२], प्रकीर्णकसूत्र - [०९] "देवेन्द्रस्तव" मूलं एवं संस्कृतछाया

॥ अह देविंदथयपइण्णयं ॥ ९ ॥

अमरनरवंदिए वंदिऊण उसभाइजिणवरिंदे । वीरवरअपच्छिमंते तेलुक्कगुरू पणमिऊणं ॥ १ ॥ ९२९ ॥ कोइ पढमपाउसंमि सावओ समयनिच्छयविहिण्णू । वन्नेइ थयमुयारं जिणमाणे (माणो) वद्धमाणम्मि ॥२॥ ॥ ९३० ॥ तस्स थुणंतस्स जिणं सोइ(सामि)यकडा पिया सुहनिसन्ना । पंजलिउडा अभिमुही सुणइ थयं वद्धमाणस्स ॥ ३ ॥ ९३१ ॥ इंदविलयाहिं तिलयरयणंकिए लक्खणंकिए सिरसा । पाए अवगयमाणस्स वंदिमो वद्धमाणस्स ॥ ४ ॥ ९३२ ॥ विणयपणएहि सिढिलमउडेहिं अप(पय)डियजसस्स देवेहिं । पाया पसंतरोसस्स वंदिमो वद्धमाणस्स ॥ ५ ॥ ९३३ ॥ बत्तीसं देविंदा जस्स गुणेहिं उवहम्मिया छायं । तो (नो) तस्स वियच्छेयं पायच्छायं उवेहामो ॥ ६ ॥ ९३४ ॥ बत्तीसं देविंदत्ति भणियमित्तंमि सा पियं भणइ । अंत-

---

अथ देवेन्द्रस्तवप्रकीर्णकम् ॥ ९ ॥ अमरनरवन्दितान् वन्दित्वा ऋषभादिजिनवरेन्द्रान् । अपश्चिमवीरवरान् तान् (शेषान्) त्रैलोक्यगुरून् प्रणम्य ॥१॥ कश्चित् श्रावकः समयनिश्चयविधिज्ञः प्रथमप्रावृषि वर्णयति स्तवमुदारं जातबहुमाने(?) वर्द्धमाने ॥ २ ॥ तस्य जिनं स्तुवतः समीपे कृतश्रुतिका प्राञ्जलिपुटाऽभिमुखी प्रिया वर्द्धमानस्य स्तवं सुखनिषण्णा शृणोति ॥ ३ ॥ इन्द्रवनितामिस्तिलकरत्नाङ्कितान् लक्षणाङ्कितान् । अपगतमानस्य वर्द्धमानस्य पादान् शिरसा वन्दामहे ॥ ४ ॥ विनयप्रणतैः शिथिलमुकुटैर्देवैः प्रशान्तरोषस्यापति(प्रकटि)-तयशसो वर्द्धमानस्य पादान् वन्दामहे ॥ ५ ॥ द्वात्रिंशद् देवेन्द्रा गुणैर्यस्य छायायामागताः । ततस्तस्य विगतच्छेदां पादच्छायामाश्रयामः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अत्र मङ्गलं कृत्वा देवेन्द्र-पृच्छा प्रदर्श्यते

"देवेन्द्रस्तव" - प्रकीर्णकसूत्र-९ (मूलं+संस्कृतछाया)

---------- मूलं [७]----------

प्रत सूत्रांक ||७||

दीप अनुक्रम [७]

प्रकीर्णकद-शके ९ दे-वेन्दस्तवे ॥ ७६ ॥

रभासं ताहे काहेमो कोउहल्लेणं ॥ ७ ॥ ९३५ ॥ कयरे ते बत्तीसं देविंदा को व कत्थ परिवसइ । केवइया कस्स ठिई को भवणपरिग्गहो तस्स ? ॥ ८ ॥ ९३६ ॥ केवइया व विमाणा भवणा नगरा व हुंति केवइया । पुढवीण व बाहल्लं उच्चत्त विमाणवन्नो वा ? ॥ ९ ॥ ९३७ ॥ का रंति व का लेणा उक्कोसं मज्झिमजहण्णं । उस्सास्सो निस्सासो ओही विसओ व को केसिं ? ॥ १० ॥ ९३८ ॥ विणओवयार ओवहम्मियाइ हासवसमुवहंतीए । पडिपुच्छिए पियाए भणइ सुअणु ! तं निसामेह ॥ ११ ॥ ९३९ ॥ सुअणाणसागराओ सुणिओ पडिपुच्छणाइ जं लद्धं । पुण वागरणावलिअं नामावलियाइ इंदाणं ॥ १२ ॥ ९४० ॥ सुण वागरणावलिअं रयणं व पणामियं च वीरेहिं । तारावलिव्व धवलं हियएण पसन्नचित्तेणं ॥ १३ ॥ ९४१ ॥ रयणप्पभाइकुडनिक्कुडवासी सुतणू ! तेउलेसागा । वीसं विक्कासियनयणा भवणवई ते निसामेह (समदिट्ठी सव्वदेविंदा) ॥ १४ ॥

॥ ६ ॥ द्वात्रिंशद्देवेन्द्रा इति भणितमात्रे सा भणति । प्रियमन्तरभाषां करिष्यामि कौतूहलेन ॥ ७ ॥ कतरे ते द्वात्रिंशद् देवेन्द्राः ? को वा कुत्र परिवसति ? । कियती कस्य स्थितिः ? को भवनपरिग्रहस्तस्य ? ॥ ८ ॥ कियन्ति वा विमानानि भवनानि नगराणि वा भवन्ति कियन्ति ? पृथिव्या वा बाहल्यमुच्चत्वं विमानवर्णो वा ? ॥ ९ ॥ किंरमणाः किंलयनाः उत्कृष्टमध्यमजघन्यैः । उच्छ्वासो निःश्वासोऽवधिर्विषयो वा कः केषाम् ? ॥ १० ॥ विनयोपचारप्राप्तया वचनाङ्गीकार(हासवश)मुद्वहन्त्या । इह प्रियया प्रतिपृष्टो भणति सुतनो ! त्वं निशमय ॥ ११ ॥ श्रुतज्ञानसागरात् श्रुतं प्रतिपृच्छया यल्लब्धं । पुनर्व्याकरणवलवन्नामावलिकादि इन्द्राणाम् ॥ १२ ॥ शृणु व्याकरणबलवद् रत्नवद् वीरैर्दत्तं । तारावलीव धवलं हृदयेन प्रसन्नचेतसा ॥ १३ ॥ रत्नप्रभादिकुड्यनिष्कुटवासिनः सुतनो ! तेजोलेश्याकाः । विंशतिर्विकसित-

प्रियापत्योः प्रश्नोत्तरे

॥ ७६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ भवनपति-अधिकारः आरभ्यते

प्रत सूत्रांक ||१५||

दीप अनुक्रम [१५]

॥ ९४२ ॥ भवणवई दो इंदा चमरे वइरोअणे असुराणं (चमरिंदबलिंद असुरनिकायं च)। दो नागकुमारिंदा भूयाणंदे य धरणे य ॥१५॥ ९४३ ॥ दो सुयणु! सुवण्णिंदा वेणूदेवे य वेणुदाली य। दो दीवकुमारिंदा पुण्णे य तहा वसिट्ठे य ॥ १६ ॥ ९४४ ॥ दो उदहिकुमारिंदा जलकंते जलपभे य नामेणं। अमियगइअमियवाहण दिसाकुमाराण दो इंदा ॥ १७ ॥ ९४५ ॥ दो वाउकुमारिंदा वेलंब पभंजणे य नामेण। दो थणियकुमारिंदा घोसे य तहा महाघोसे ॥ १८ ॥ ९४६ ॥ दो विज्जुकुमारिंदा हरिकंत हरिस्सहे य नामेणं। अग्गिसिहअग्गिमाणव हुयासणवईवि दो इंदा ॥ १९ ॥ ९४७ ॥ एए विकसियनयणे! दसदिसि वियसियजसा मए कहिया। भवणवरसुहनिसन्ने सुण भवणपरिग्गहमिमेसिं ॥ २० ॥ ९४८ ॥ चमरवइरोअणाणं असुरिंदाणं महाणुभागाणं। तेसिं भवणवराणं चउसट्ठिमहे सयसहस्से ॥ २१ ॥ ९४९ ॥ नागकुमारिंदाणं भूयाणं-

नयना भवनपतयस्तान् निशमय (सम्यग्दृष्टयः सर्वदेवेन्द्राः) ॥ १४ ॥ द्वौ भवनपतीन्द्रौ चमरो वैरोचनोऽसुराणाम्। द्वौ नागकुमारेन्द्रौ भूतानन्दश्च धरणश्च ॥ १५ ॥ द्वौ सुतनो! सुवर्णकुमारेन्द्रौ वेणुदेवश्च वेणुदालिश्च। द्वौ द्वीपकुमारेन्द्रौ पूर्णश्च तथा वशिष्टश्च ॥ १६ ॥ द्वावुदधिकुमारेन्द्रौ जलकान्तो जलप्रभश्च नाम्ना। अमितगतिरमितवाहनो दिक्कुमाराणां द्वाविन्द्रौ ॥ १७ ॥ द्वौ वायुकुमारेन्द्रौ वेलम्बः प्रभञ्जनश्च नाम्ना। द्वौ स्तनितकुमारेन्द्रौ घोषश्च तथा महाघोषः ॥ १८ ॥ द्वौ विद्युत्कुमारेन्द्रौ हरिकान्तो हरिसहश्च नाम्ना। अग्निशिखाऽग्निमानवौ हुताशनपती अपि द्वाविन्द्रौ ॥ १९ ॥ एते विकसितनयने! दशदिग्विकसितयशसो मया कथिताः। भवनवरसुखनिषण्णे! शृणु भवनपरिग्रहमेषाम् ॥ २० ॥ चमरवैरोचनयोरसुरेन्द्रयोर्महानुभागयोः। तेषां भवनवराणां चतुःषष्टिरधः शतसहस्राणि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
||२२||

दीप
अनुक्रम
[२२]

प्रकीर्णकदशके ९ देवेन्द्रस्तवे ॥ ७७ ॥

द्धरणाण दुण्हंपि । तेसिं भवणवराणं चुलसीइमहे सयसहस्से ॥ २२ ॥ ९५० ॥ दो सुयणु ! सुवण्णिंदा वेणू-
देवे य वेणुदाली य । तेसिं भवणवराणं बावत्तरिमो सयसहस्सा ॥ २३ ॥ ९५१ ॥ वाउकुमारिंदाणं वेलंब-
पभंजणाण दुण्हंपि । तेसिं भवणवराणं छन्नवइमहे सयसहस्सा ॥ २४ ॥ ९५२ ॥ चउसट्ठी असुराणं चुलसीई
चेव होइ नागाणं । बावत्तरि सुवण्णाणं वाउकुमाराण छन्नउई ॥ २५ ॥ ९५३ ॥ दीवदिसाउदहीणं विज्जुकु-
मारिंदथणियमग्गीणं । छण्हंपि जुयलयाणं बावत्तरिमो सयसहस्सा ॥ २६ ॥ ९५४ ॥ इक्किक्कम्मि य जुयले
नियमा बावत्तरि सयसहस्सा । सुंदरि ! लीलाइ ठिए ठिईविसेसं निसामेहि ॥ २७ ॥ ९५५ ॥ चमरस्स साग-
रोवम सुंदरि ! उक्कोसिया ठिई भणिया । साहीया बोद्धव्वा बलिस्स वइरोयणिंदस्स ॥ २८ ॥ ९५६ ॥ जे दाहि-
णाण इंदा चमरं मुत्तूण सेसया भणिया । पलिओवमं दिवड्ढं ठिई उक्कोसिया तेसिं ॥ २९ ॥ ९५७ ॥ जे

चमरादि
भवनादि

॥ २१ ॥ नागकुमारेन्द्रयोर्भूतानन्दधरणयोर्द्वयोरपि । तेषां भवनवराणां चतुरशीतिरधः शतसहस्राणि ॥ २२ ॥ द्वौ सुतनो ! सुवर्णेन्द्रौ
वेणुदेवश्च वेणुदालिश्च । तयोर्भवनवराणां द्वासप्ततिः शतसहस्राणि ॥ २३ ॥ वायुकुमारेन्द्रयोर्वेलम्बप्रभञ्जनयोर्द्वयोरपि । तेषां भवन-
वराणां षण्णवतिरधः शतसहस्राणि ॥ २४ ॥ चतुःषष्टिरसुराणां चतुरशीतिश्चैव भवति नागानाम् । द्वासप्ततिः सुवर्णानां वायुकु-
माराणां षण्णवतिः ॥ २५ ॥ द्वीपदिगुदधीनां विद्युत्कुमारेन्द्रस्तनितानीनाम् । षण्णामपि युगलानां द्वासप्ततिः शतसहस्राणि ॥ २६ ॥
एकैकस्मिंश्च युगले नियमाद्वासप्ततिः शतसहस्राणि । सुन्दरि ! लीलया स्थिते ! स्थितिविशेषं निशमय ॥ २७ ॥ चमरस्य सागरोपमं
सुन्दरि ! उत्कृष्टा स्थितिर्भणिता । साधिका बोद्धव्या बलेर्वैरोचनेन्द्रस्य ॥ २८ ॥ ये दक्षिणानामिन्द्राश्चमरं मुक्त्वा शेषा भणिताः । पल्यो-

॥ ७७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ||३०||

दीप अनुक्रम [३०]

उत्तरेण इंदा बलिं पमुत्तूण सेसया भणिया । पलिओवमाइं दुण्णि उ देसूणाइं ठिई तेसिं ॥ ३० ॥ ९५८ ॥
एसोवि ठिइविसेसो सुंदररूवे! विसिट्ठरूवाणं । भोमिज्जसुरवराणं सुण अणुभागो सुनयराणं ॥ ३१ ॥ ९५९ ॥
जोअणसहस्समेगं ओगाहित्तूण भवणनगराइं । रयणप्पभाइ सव्वे इक्कारस जोअणसहस्से ॥ ३२ ॥ ९६० ॥
अंतो चउरंसा खलु अहियमणोहरसहावरमणिज्जा । बाहिरओऽविय वट्टा निम्मलवइरामया सव्वे ॥ ३३ ॥ ९६१ ॥
उक्किन्नंतरफलिहा अब्भिंतरओ उ भवणवासीणं । भवणनगरा विरायंति कणगसुसिलिट्ठपागारा ॥ ३४ ॥ ९६२ ॥
वरपउमकण्णियामंडियाहिं हिट्ठा सहावलट्ठेहिं । सोहिंति पइट्ठाणेहिं विविहमणिभत्तिचित्तेहिं ॥ ३५ ॥ ९६३ ॥
चंदणपयट्ठिएहि य आसत्तोसत्तमल्लदामेहिं । दारेहिं पुरवरा ते पडागमालाउरा रम्मा ॥ ३६ ॥ ९६४ ॥
अट्ठेव जोयणाइं उविद्धा हुंति ते दुवारवरा । धूमवडियाउलाइं कंचणदामोवणद्धाणि ॥ ३७ ॥ ९६५ ॥ जहिं

पमं द्वयर्द्धं स्थितिरुत्कृष्टा तेषाम् ॥ २९ ॥ ये उत्तरत इन्द्रा बलिं प्रमुच्य शेषा भणिताः । पल्योपमे द्वे एव देशोने स्थितिस्तेषाम् ॥ ३० ॥
एषोऽपि स्थितिविशेषः सुन्दररूपे! विशिष्टरूपाणां । भौमेयसुरवराणां शृण्वनुभागं सुनगराणाम् ॥ ३१ ॥ योजनसहस्रमेकमवगाह्य भवन-
नगराणि । रत्नप्रभायां सर्वाणि एकादश योजनसहस्राणि ॥ ३२ ॥ अन्तश्चतुरस्राणि खलु अधिकमनोहरस्वभावरमणीयानि । बाह्यतोऽपि
वृत्तानि निर्मलवज्रमयानि सर्वाणि ॥ ३३ ॥ उत्कीर्णान्तरपरिखा अभ्यन्तरतस्तु भवनवासिनाम् । भवननगराणि विराजन्ते सुश्लिष्टकनक-
प्राकाराः ॥ ३४ ॥ वरपद्मकर्णिकामण्डिताभिरधः स्वभावलष्टैः । शोभन्ते विविधमणिभक्तिचित्रैः प्रतिष्ठानैः ॥ ३५ ॥ चन्दनपदस्थितैरास-
क्तोत्सक्तमाल्यदामभिर्द्वारैः (शोभन्ते) तानि पुरवराणि पताकामालातुराणि रम्याणि ॥ ३६ ॥ अष्टौ च योजनान्युद्विद्धानि भवन्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"देवेन्द्रस्तव" - प्रकीर्णकसूत्र-९ (मूलं+संस्कृतछाया)

---------- मूलं [३८]----------

प्रत सूत्रांक ||३८||

दीप अनुक्रम [३८]

प्रकीर्णकद-शके ९ दे-वेन्द्रस्तवे ॥ ७८ ॥

देवा भवणवई वरतरुणीगीयवाइयरवेणं । निच्चसुहिया पमुइया गयंपि कालं न याणंति ॥ ३८॥९६६॥ चमरे धरणे तह वेणुदेव पुण्णे य होइ जलकंते । अमियगई वेलंबे घोसे हरी अ अग्गिसिहे ॥ ३९ ॥ ९६७ ॥ कणगमणिरयणथूभियरम्माइं सवेइयाइं भवणाइं । एएसिं दाहिणओ सेसाणं दाहिणे(उत्तरे)पासे ॥४०॥९६८॥ चउतीसा चोयाला अट्ठतीसं च सयसहस्साइं । चत्ता पन्नासा खलु दाहिणओ हुंति भवणाइं ॥ ४१ ॥९६९॥ तीसा चत्तालीसा चउतीसं चेव सयसहस्साइं । छत्तीसा छायाला उत्तरओ हुंति भवणाइं ॥ ४२ ॥ ९७० ॥ भवणविमाणवईणं तायत्तीसा य लोगपाला य । सव्वेसिं तिन्नि परिसा समाणचउगुणायरक्खा उ ॥ ४३ ॥ ॥ ९७१ ॥ चउसट्ठी सट्ठी खलु छच्च सहस्सा तहेव चत्तारि । भवणवइवाणमंतरजोइसियाणं च सामाणे

चमरादि भवनादि

तानि द्वारवराणि । धूपघटिकाकुलानि काञ्चनदामोपनद्धानि ॥ ३७ ॥ यत्र देवा भवनपतयो वरतरुणीगीतवादितरवेण । नित्यसुखिताः प्रमुदिता गतमपि कालं न जानन्ति ॥ ३८ ॥ चमरो धरणस्तथा वेणुदेवः पूर्णश्च भवति जलकान्तः । अमितगतिर्वेलम्बो घोषो हरिश्चाग्निशिखः ॥ ३९ ॥ कनकमणिरत्नस्तूपिकारम्याणि सवेदिकानि भवनानि । एतेषां दक्षिणतः शेषाणामुत्तरे पार्श्वे ॥ ४० ॥ चतुस्त्रिंशत् चतुश्चत्वारिंशत् अष्टत्रिंशच्च शतसहस्राणि । चत्वारिंशत् पञ्चाशत् खलु दक्षिणस्यां भवन्ति भवनानि ॥ ४१ ॥ त्रिंशत् चत्वारिंशत् चतुस्त्रिंशच्चैव शतसहस्राणि । षट्त्रिंशत् षट्चत्वारिंशत् उत्तरस्यां भवन्ति भवनानि ॥ ४२ ॥ भवनविमानपतीनां त्रायस्त्रिंशाश्च लोकपालाश्च । सर्वेषां तिस्रः पर्षदः सामानिकचतुर्गुणा आत्मरक्षाः ॥ ४३ ॥ चतुःषष्टिः षष्टिः खलु षट् च सहस्राणि तथैव चत्वारि । भवन-

॥ ७८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
||४५||

दीप
अनुक्रम
[४५]

॥ ४४ ॥ ९७२ ॥ पंचग्गमहिसीओ चमरबलीणं हवंति नायव्वा । सेसयभवणिंदाणं छच्चेव य अग्गमहिसीओ ॥ ४५ ॥ ९७३ ॥ दो चेव जंबुदीवे चत्तारि य माणुसुत्तरे सेले । छव्वारुणे समुद्दे अट्ठ य अरुणम्मि दीवम्मि ॥४६॥ ९७४ ॥ जंनामए समुद्दे दीवे वा जंमि हुंति आवासा । तन्नामए समुद्दे दीवे वा तेसि उप्पाया ॥४७॥ ॥ ९७५ ॥ असुराणं नागाणं उदहिकुमाराण हुंति आवासा । वरुणवरे दीवम्मी तत्थेव य तेसि उप्पाया ॥ ४८ ॥ ९७६ ॥ दीवदिसाअग्गीणं थणियकुमाराण हुंति आवासा । अरुणवरे दीवम्मि य तत्थेव य तेसि उप्पाया ॥ ४९ ॥ ९७७ ॥ वाउसुवण्णिंदाणं एएसिं माणुसुत्तरे सेले । हरिणो हरिप्पहस्स य विज्जुप्पभमालवंतेसु ॥ ५० ॥ ९७८ ॥ एएसिं देवाणं बलवीरियपरक्कमो अ जो जस्स । ते सुंदरि ! वण्णेहं अहक्कमं आणुपुव्वीए ॥ ५१ ॥ ९७९ ॥ जाव य जंबुद्दीवो जाव य चमरस्स चमरचंचा उ । असुरेहिं असुरकण्णाहिं तस्स

पतिव्यन्तरज्योतिष्काणां सामानिकाः ॥ ४४ ॥ पञ्चाग्रमहिष्यश्चमरबलिनोः भवन्ति ज्ञातव्याः । शेषभवनेन्द्राणां षट् चैव चाग्रमहिष्यः ॥ ४५ ॥ द्वावेव जम्बूद्वीपे चत्वारश्च मानुषोत्तरे शैले । षड् वारुणे समुद्रे अष्टौ चारुणे द्वीपे ॥ ४६ ॥ यन्नामके समुद्रे द्वीपे वा यस्मिन् भवन्त्यावासाः । तन्नामके द्वीपे समुद्रे वा तेषामुत्पातपर्वताः ॥ ४७ ॥ असुराणां नागानामुदधिकुमाराणां भवन्त्यावासाः । वरुणवरे द्वीपे तत्रैव च तेषामुत्पाताः ॥ ४८ ॥ द्वीपदिगग्नीनां स्तनितकुमाराणां भवन्त्यावासाः । अरुणवरे द्वीपे तत्रैव च तेषामुत्पातपर्वताः ॥ ४९ ॥ वायुसुपर्णेन्द्राणामेतेषां मानुषोत्तरे शैले । हरेर्हरिप्रभस्य च विद्युत्प्रभमाल्यवतोः ॥ ५० ॥ एतेषां देवानां बलवीर्यपराक्रमश्च यो यस्य । तं सुन्दरि! वर्णयेऽहं यथाक्रममानुपूर्व्या ॥ ५१ ॥ यावच्च जम्बूद्वीपो यावच्च चमरस्य चमरचञ्चा । असुरैरसुरकन्याभिर्भुं तस्य

च. स. १४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

---------- मूलं [५२]----------

प्रत सूत्रांक ||५२||

दीप अनुक्रम [५२]

१० प्रकीर्णकेषु ८ गणिविद्यायां ॥ ७९ ॥

विसओ भरेउं जे ॥ ५२ ॥ ९८० ॥ तं चेव समइरेगं बलिस्स वइरोयणस्स बोद्धव्वं । असुरेहिं असुरकण्णाहिं तस्स विसओ भरेउं जे ॥ ५३ ॥ ९८१ ॥ धरणोवि नागराया जंबुद्दीवं फडाइ छाइज्जा । तं चेव समइरेगं भूयाणंदे य बोद्धव्वं ॥ ५४ ॥ ९८२ ॥ गरुलोऽवि वेणुदेवो जंबुद्दीवं छइज्ज पक्खेणं । तं चेव समइरेगं वेणुदालिम्मि बोद्धव्वं ॥ ५५ ॥ ९८३ ॥ पुण्णोवि जंबुदीवं पाणितलेणं छइज्ज इक्केणं । तं चेव समइरेगं हवइ वसिट्ठेवि बोद्धव्वं ॥ ५६ ॥ ९८४ ॥ इक्काइ जलुम्मीए जंबुद्दीवं भरिज्ज जलकंतो । तं चेव समइरेगं जलप्पभे होइ बोद्धव्वं ॥ ५७ ॥ ९८५ ॥ अमियगइस्सवि विसओ जंबुद्दीवं तु पायपण्हीए । कंपिज्ज निरवसेसं इयरो पुण तं समइरेगं ॥ ५८ ॥ ९८६ ॥ इक्काइ वायुगुंजाइ जंबुद्दीवं भरिज्ज वेलंबो । तं चेव समइरेगं पभंजणे होइ बोद्धव्वं ॥ ५९ ॥ ९८७ ॥ घोसोऽवि जंबुदीवं सुंदरि ! इक्केण थणियसद्देणं । बहिरीकरिज्ज सव्वं इयरो पुण तं समइरेगं

भवनपति भवन-स्थितिः

विषयः ॥ ५२ ॥ स एव समतिरेको बलेर्वैरोचनस्य बोद्धव्यः । असुरैरसुरकन्याभिर्भर्त्तुं तस्य विषयः ॥ ५३ ॥ धरणोऽपि नागराजो जम्बूद्वीपं फणेनाच्छादयेत् । तमेव समतिरेकं भूतानन्दे च बोद्धव्यः ॥ ५४ ॥ गरुडोऽपि वेणुदेवो जम्बूद्वीपमाच्छादयेत् पक्षेण । तमेव समतिरेकं वेणुदालौ बोद्धव्यः ॥ ५५ ॥ पूर्णोऽपि जम्बूद्वीपं पाणितलेनाच्छादयेदेकेन । तमेव समतिरेकं भवति वशिष्टेऽपि बोद्धव्यः ॥ ५६ ॥ एकया जलोर्म्या जम्बूद्वीपं भरेज्जलकान्तः । तमेव समतिरेकं जलप्रभे भवति बोद्धव्यः ॥ ५७ ॥ अमितगतेरपि विषयो जम्बूद्वीपं तु पादपार्ष्णिना । कम्पयेन्निरवशेषमितरः पुनस्तं समतिरेकम् ॥ ५८ ॥ एकया वातगुञ्जया जम्बूद्वीपं भरेद्वेलम्बः । तमेव समतिरेकं प्रभञ्जने भवति बोद्धव्यः ॥ ५९ ॥ घोषोऽपि जम्बूद्वीपं सुन्दरि ! एकेन स्तनितशब्देन । बधिरीकुर्यात्सर्वमितरः पुनस्तं समतिरे-

॥ ७९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

---------- मूलं [६१]----------

प्रत सूत्रांक ||६१||

दीप अनुक्रम [६१]

॥ ६० ॥ ९८८ ॥ इक्काइ विज्जुयाए जंबुद्दीवं हरी पकासिज्ज । तं चेव समइरेगं हरिस्सहे होइ बोद्धव्वं ॥ ६१ ॥
॥ ९८९ ॥ इक्काइ अग्गिजालाइ जंबुद्दीवं डहिज्ज अग्गिसिहो । तं चेव समइरेगं माणवए होइ बोद्धव्वं ॥ ६२ ॥
॥ ९९० ॥ तिरियं तु असंखिज्जा दीवसमुद्दा सएहिं रूवेहिं । अवगाढाउ करिज्जा सुंदरि ! एएसि एगयरो
॥ ६३ ॥ ९९१ ॥ पभू अन्नयरो इंदो जंबुद्दीवं तु वामहत्थेण । छत्तं जहा धरिज्जा अन्नयओ मंदरं घित्तुं ॥ ६४ ॥
॥ ९९२ ॥ जंबुद्दीवं काऊण छत्तयं मंदरं व से दंडं । पभू अन्नयरो इंदो एसो तेसिं बलविसेसो ॥ ६५ ॥ ९९३ ॥
एसा भवणवईणं भवणठिई वन्निया समासेणं । सुण वाणमंतराणं भवणवईआणुपुव्वीए ॥ ६६ ॥ ९९४ ॥
पिसाय भूआ जक्खा य रक्खसा किन्नरा य किंपुरिसा । महोरगा य गंधव्वा अट्ठविहा वाणमंतरिया ॥ ६७ ॥
॥ ९९५ ॥ एए उ समासेणं कहिया भे वाणमंतरा देवा । पत्तेयंपि य वुच्छं सोलस इंदे महिड्ढीए ॥६८॥ ९९६ ॥

कम् ॥ ६० ॥ एकया विद्युता जम्बूद्वीपं हरिः प्रकाशयेत् । तमेव समतिरेकं हरिसहे भवति बोद्धव्यः ॥ ६१ ॥ एकयाऽग्निज्वालया जम्बूद्वीपं दहेदग्निशिखः । तमेव समतिरेकं माणवके भवति बोद्धव्यः ॥ ६२ ॥ तिर्यक् तु असङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् स्वकै रूपैः । अवगाढान् कुर्यात् सुन्दरि! एतेषामेकतरः ॥ ६३ ॥ प्रभुरेकतर इन्द्रो जम्बूद्वीपं तु वामहस्तेन । छत्रं यथा धर्त्तुमन्यतो मन्दरं ग्रहीतुम् ॥ ६४ ॥ जम्बूद्वीपं कर्त्तुं छत्रं मन्दरं च तस्य दण्डम् । प्रभुरन्यतर इन्द्र एष तेषां बलविशेषः ॥ ६५ ॥ एषा भवनपतीनां भवनस्थितिर्वर्णिता समासेन । शृणु व्यन्तराणां भवनपत्यानुपूर्व्या ॥ ६६ ॥ पिशाचा भूता यक्षाश्च राक्षसाः किन्नराश्च किंपुरुषाः । महोरगाश्च गान्धर्वा अष्टविधा व्यन्तराः ॥ ६७ ॥ एते तु समासेन कथिता भवत्या व्यन्तरा देवाः । प्रत्येकमपि च वक्ष्ये षोडशेन्द्रान् महर्धिकान्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ वानव्यंतर-अधिकारः आरभ्यते

"देवेन्द्रस्तव" - प्रकीर्णकसूत्र-९ (मूलं+संस्कृतछाया)

---------- मूलं [६९]----------

प्रत सूत्रांक ||६९||

दीप अनुक्रम [६९]

१० प्रकीर्णकेषु ८ गणिविद्यायां ॥ ८० ॥

काल य महाकाल सुरूव पडिरूव पुन्नभद्द य । अमरवइ माणिभद्द भीम य तहा महाभीमे ॥ ६९ ॥ ९९७ ॥ किन्नरकिंपुरिसे खलु सप्पुरिसे खलु तहा महापुरिसे । अइकायमहाकाए गीयरई चेव गीयजसे ॥७०॥९९८॥ सन्निहिए सामाणे धाइ विधाए विसी य इसिपाले । इस्सर महिस्सरे या हवइ सुवच्छे विसाले य ॥ ७१ ॥ ॥ ९९९ ॥ हासे हासरईविअ सेए अ तहा भवे महासेए । पयए पययावईविय नेयव्वा आणुपुव्वीइ ॥ ७२ ॥ ॥१०००॥ उड्ढमहे तिरियंमि य वसहिं ओविंति वंतरा देवा । भवणा पुणण्ह रयणप्पभाइ उवरिल्लए कंडे ॥ ७३ ॥ १००१ ॥ इक्किक्कम्मि य जुयले नियमा भवणा वरा असंखिज्जा । संखिज्जवित्थडा पुण नवरं एतत्थ नाणत्तं ॥ ७४ ॥ १००२ ॥ जंबुद्दीवसमा खलु उक्कोसेणं भवंति भवणवरा । खुड्डा खित्तसमाविअ विदेहसमया य मज्झिमया ॥ ७५ ॥ १००३ ॥ जहिं देवा वंतरिया वरतरुणीगीयवाइयरवेणं । निच्चसुहिया पमु-

॥ ६८ ॥ कालश्च महाकालः सुरूपः प्रतिरूपः पूर्णभद्रश्च । अमरपतिर्माणिभद्रो भीमश्च तथा महाभीमः ॥ ६९ ॥ किन्नरः किंपुरुषः खलु सत्पुरुषः खलु तथा महापुरुषः । अतिकायो महाकायो गीतरतिश्चैव गीतयशाः ॥ ७० ॥ सन्निहितः सामानो धाता विधाता ऋषिः ऋषिपालः । ईश्वरो महेश्वरश्च भवति सुवत्सो विशालश्च ॥ ७१ ॥ हासो हासरतिरपि च श्वेतश्च तथा भवति महाश्वेतः । पतङ्गश्च पतङ्गपतिरपि च ज्ञातव्या आनुपूर्व्या ॥ ७२ ॥ ऊर्ध्वमधस्तिरश्चि च वसतिमुपयन्ति व्यन्तरा देवाः । भवनानि पुनरेषां रत्नप्रभायां उपरितने काण्डे ॥ ७३ ॥ एकैकस्मिंश्च युगले नियमाद्भवनानि वराण्यसङ्ख्येयानि । सङ्ख्यातविस्तृतानि पुनः परमत्र नानात्वम् ॥ ७४ ॥ जम्बूद्वीपसमानि खलु उत्कृष्टेन भवन्ति भवनवराणि । क्षुल्लानि भरतक्षेत्रसमान्यपि च विदेहसमानि च मध्यमानि ॥ ७५ ॥ यत्र देवा

व्यन्तर-भवनानि

॥ ८० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र - [३२], प्रकीर्णकसूत्र - [०९] "देवेन्द्रस्तव" मूलं एवं संस्कृतछाया

प्रत सूत्रांक ||७६||

दीप अनुक्रम [७६]

इया गयंपि कालं न याणंति ॥ ७६ ॥ १००४ ॥ काले सुरूव पुण्णे भीमे तह किन्नरे य सप्पुरिसे । अइकाए गीयरई अट्ठेव य हुंति दाहिणओ ॥ ७७ ॥ १००५ ॥ मणिकणगरयणथूभिअजंबूणयवेइयाइं भवणाइं । एएसिं दाहिणओ सेसाणं उत्तरे पासे ॥ ७८ ॥ १००६ ॥ दस वाससहस्साइं ठिई जहन्ना उ वंतरसुराणं । पलिओवमं तु इक्कं ठिई उ उक्कोसिया तेसिं ॥ ७९ ॥ १००७ ॥ एसा वंतरियाणं भवणठिई वन्निया समासेणं । सुण जोइसालयाणं आवासविहिं सुरवराणं ॥८०॥ १००८ ॥ चंदा सूरा तारागणा य नक्खत्त गहगण समत्ता । पंचविहा जोइसिया ठिई वियारी य ते गणिया ॥ ८१ ॥ १००९ ॥ अद्धकविट्ठगसंठाणसंठिया फालियामया रम्मा । जोइसियाण विमाणा तिरियंलोए असंखिज्जा ॥ ८२ ॥ १०१० ॥ धरणियलाउ समाओ सत्तहिं नउएहिं जोयणसएहिं । हिट्ठिल्लो होइ तलो सूरो पुण अट्ठहिं सएहिं ॥ ८३ ॥ १०११ ॥ अट्ठसए आसीए चंदो

व्यन्तरा वरतरुणीगीतवादित्ररवेण । नित्यसुखिताः प्रमुदिता गतमपि कालं न जानन्ति ॥ ७६ ॥ कालः सुरूपः पूर्णो भीमस्तथा किन्नरश्च सत्पुरुषः । अतिकायो गीतरतिः अष्टैव च भवन्ति दक्षिणस्याम् ॥७७॥ मणिकनकरत्नस्तूपिकानि जाम्बूनदवेदिकानि भवनानि । एतेषां दक्षिणतः शेषाणामुत्तरे पार्श्वे ॥ ७८ ॥ दश वर्षसहस्राणि जघन्या स्थितिस्तु व्यन्तरसुराणाम् । पल्योपमं त्वेकं स्थितिस्तूत्कृष्टैषाम् ॥७९॥ एषा व्यन्तराणां भवनस्थितिर्वर्णिता समासेन । शृणु ज्योतिष्काणामावासविधिं सुरवराणाम् ॥ ८० ॥ चन्द्राः सूर्यास्तारकागणश्च नक्षत्राणि ग्रहगणः समस्ताः । पञ्चविधा ज्योतिष्काः स्थितिमन्तो विचारिणश्च ते गणिताः ॥ ८१ ॥ अर्द्धकपित्थसंस्थानसंस्थितानि स्फटिकमयानि रम्याणि । ज्योतिष्काणां विमानानि तिर्यग्लोकेऽसङ्ख्यातानि ॥ ८२ ॥ समाद् धरणितलात्सप्तभिर्नवतैर्योजनशतैः । अधस्तनं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ ज्योतिष्क-अधिकार: आरभ्यते

---------- मूलं [८४]----------

प्रत सूत्रांक ||८४||

दीप अनुक्रम [८४]

णकेषु ८ गणिवि-द्यायां ॥ ८१ ॥

तस्स भागछप्पण्णं । चंदपरिमंडलं खलु अडयाला होइ सूरस्स ॥ ८५ ॥ १०१३ ॥ जहिं देवा जोइसिया वरतरुणीगीयवाइयरवेणं । निवसुहिया पमुइया गयंपि कालं न याणंति ॥ ८६ ॥ १०१४ ॥ छप्पन्नं खलु भागा विच्छिन्नं चंदमंडलं होइ । अडवीसं च कलाओ बाहल्लं तस्स बोद्धव्वं ॥ ८७ ॥ १०१५ ॥ अडयालीसं भागा विच्छिन्नं सूरमंडलं होइ । चउवीसं च कलाओ बाहल्लं तस्स बोद्धव्वं ॥ ८८ ॥ १०१६ ॥ अद्धजोअणिया उ गहा तस्सद्धं चेव होइ नक्खत्ता । नक्खत्तद्धे तारा तस्सद्धं चेव बाहल्लं ॥ ८९ ॥ १०१७ ॥ जोअणमद्धं तत्तो गाऊअं पंचधणुसया हुंति । गहनक्खत्तगणाणं तारविमाणाण विक्खंभो ॥ ९० ॥ १०१८ ॥ जो जस्सा विक्खंभो तस्सद्धं चेव होइ बाहल्लं । तं तिउणं सविसेसं परिरओ होइ बोद्धव्वो ॥ ९१ ॥ १०१९ ॥ सोलस

ज्योतिष्का-वासाः

तलं भवति सूर्यः पुनरष्टभिः शतैः ॥ ८३ ॥ अष्टशत्यामशीत्यधिकायां चन्द्रस्तथैव भवत्युपरितले । एकं दशोत्तरशतं बाहल्यं ज्योतिषो भवति ॥ ८४ ॥ एकषष्टिभागं कृत्वा योजनं तस्य षट्पञ्चाशद्भागाः । चन्द्रपरिमण्डलं खलु अष्टचत्वारिंशद्भवंति सूर्यस्य ॥ ८५ ॥ यत्र देवा ज्योतिष्का वरतरुणीगीतवादित्ररवेण । नित्यसुखिताः प्रमुदिताः गतमपि कालं न जानन्ति ॥ ८६ ॥ षट्पञ्चाशत् खलु भागा विस्तीर्णं चन्द्रमण्डलं भवति । अष्टाविंशतिश्च भागा बाहल्यं तस्य बोद्धव्यम् ॥ ८७ ॥ अष्टचत्वारिंशद्भागा विस्तीर्णं सूर्यमण्डलं भवति । चतुर्विंशतिश्च भागा बाहल्यं तस्य बोद्धव्यम् ॥ ८८ ॥ अर्द्धयोजनास्तु ग्रहास्तस्यार्द्धमेव भवति नक्षत्राणाम् । नक्षत्रार्द्धं तारकास्तदर्द्धमेव बाहल्यम् ॥ ८९ ॥ योजनमर्द्धं ततो गव्यूतं पञ्च धनुःशतानि च भवन्ति । ग्रहनक्षत्रगणानां ताराविमानानां विष्कम्भः ॥ ९० ॥ यो

॥ ८१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
||९२||

दीप
अनुक्रम
[९२]

चेव सहस्सा अट्ठ य चउरो य दुन्नि य सहस्सा । जोइसिआण विमाणा वहंति देवाभिउगाओ ॥९२॥१०२०॥
पुरओ वहंति सीहा दाहिणओ कुंजरा महाकाया । पच्चत्थिमेण वसहा तुरगा पुण उत्तरे पासे ॥९३॥१०२१॥
चंदेहि उ सिग्घयरा सूरा सूरेहिं तह गहा सिग्घा । नक्खत्ता उ गहेहि य नक्खत्तेहिं तु ताराओ ॥ ९४ ॥
॥ १०२२ ॥ सव्वप्पगई चंदा तारा पुण हुंति सव्वसिग्घगई । एसो गईविसेसो जोइसियाणं तु देवाणं ॥ ९५ ॥
॥ १०२३ ॥ अप्पिड्ढियाओ तारा नक्खत्ता खलु तओ महिड्ढियए । नक्खत्तेहिं तु गहा गहेहिं सूरा तओ
चंदा ॥ ९६ ॥ १०२४ ॥ सव्वब्भिंतरऽभीई मूलो पुण सव्वबाहिरो भमइ । सव्वोवरिं च साई भरणी पुण सव्व-
हिट्ठिमया ॥ ९७ ॥ १०२५ ॥ साहा गहनक्खत्ता मज्झेगा हुंति चंदसूराणं । हिट्ठा समं च उप्पिं ताराओ

यस्य विष्कम्भस्तस्य तदर्द्धमेव भवति बाहल्यम् । सविशेषत्रिगुणः परिरयो भवति बोद्धव्यः ॥ ९१ ॥ षोडशैव सहस्राणि अष्टौ च चत्वारि च द्वे च सहस्रे । ज्योतिष्काणां विमानानि आभियोगिका देवा वहन्ति ॥ ९२ ॥ पुरतो वहन्ति सिंहा दक्षिणतः कुञ्जरा महाकायाः । पश्चिमायां वृषभास्तुरगाः पुनरुत्तरे पार्श्वे ॥ ९३ ॥ चन्द्रेभ्यस्तु शीघ्रतराः सूर्याः सूर्येभ्यस्तथा ग्रहाः शीघ्राः । नक्षत्राणि तु ग्रहेभ्यश्च नक्षत्रेभ्यस्तु तारकाः ॥ ९४ ॥ सर्वाल्पगतयश्चन्द्रास्तारकाः पुनर्भवन्ति सर्वशीघ्रगतयः । एष गतिविशेषो ज्योतिष्काणां तु देवानाम् ॥ ९५ ॥ अल्पर्द्धिकास्तारका नक्षत्राणि खलु ततो महर्द्धिकतराणि । नक्षत्रेभ्यस्तु ग्रहा ग्रहेभ्यः सूर्यास्तेभ्यः चन्द्राः ॥ ९६ ॥ सर्वाभ्यन्तरेऽभिजिन्मूलः पुनः सर्वबाह्ये भ्राम्यति । सर्वोपरिष्टाच्च स्वातिर्भरणिः पुनः सर्वाधस्तात् ॥ ९७ ॥ शाखा ग्रहनक्षत्राणि चन्द्रसूर्ययोः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
||९८||

दीप
अनुक्रम
[९८]

प्रकीर्णकद-
शके ९ दे-
वेन्दस्तवे
॥ ८२ ॥

चंदसूराणं ॥ ९८ ॥ १०२६ ॥ पंचेव धणुसयाइं जहन्नयं अंतरं तु ताराणं । दो चेव गाउआइं निव्वाघाएण उक्कोसं ॥ ९९ ॥ १०२७ ॥ दोन्नि सए छावट्ठे जहन्नयं अंतरं तु ताराणं । बारस चेव सहस्सा दो बायाला य उक्कोसा ॥ १०० ॥ १०२८ ॥ एयस्स चंदजोगो सत्तट्ठिं खंडिओ अहोरत्तो । ते हुंति नव मुहुत्ता सत्तावीसं कलाओ अ ॥ १०१ ॥ १०२९ ॥ सयभिसया भरणीओ अद्दा अस्सेस साइ जिट्ठा य । एए छन्नक्खत्ता पन्नरसमुहुत्तसंजोगा ॥ १०२ ॥ १०३० ॥ तिन्नेव उत्तराइं पुणवसू रोहिणी विसाहा य । एए छन्नक्खत्ता पणयालमुहुत्तसंजोगा ॥ १०३ ॥ १०३१ ॥ अवसेसा नक्खत्ता पनरसया हुंति तीसइमुहुत्ता । चंदंमि एस जोगो नक्खत्ताणं मुणेयव्वो ॥ १०४ ॥ १०३२ ॥ अभिई छच्च मुहुत्ते चत्तारि अ केवले अहोरत्ते । सूरेण समं वच्चइ इत्तो सेसाण वुच्छामि ॥ १०५ ॥ १०३३ ॥ सयभिसया भरणीओ अद्दा अस्सेस साइ जिट्ठा य । वच्चंति

काश्चिन्मध्ये । अधः सममुपरि च तारकाश्चन्द्रसूर्ययोः ॥ ९८ ॥ पञ्चैव धनुःशतानि जघन्यमन्तरं तु तारकाणाम् । द्वे एव गव्यूते निर्व्याघातेनोत्कृष्टम् ॥ ९९ ॥ द्वे शते षट्षष्ट्यधिके जघन्यमन्तरं तु तारकयोः । द्वादश चैव सहस्राणि द्वे शते द्विचत्वारिंशच्चोत्कृष्टतः ॥ १०० ॥ एतैश्चन्द्रयोगः सप्तषष्टिखण्डितोऽहोरात्रः । ते भवन्ति नव मुहूर्त्ताः सप्तविंशतिश्च भागाः (अभिजिति) ॥ १०१ ॥ शतभिषग् भरणी आर्द्राऽश्लेषा स्वातिर्ज्येष्ठा च । एतानि पण्नक्षत्राणि पञ्चदशमुहूर्त्तसंयोगानि ॥ १०२ ॥ त्रीण्येवोत्तराणि पुनर्वसू रोहिणी विशाखा च । एतानि पण्नक्षत्राणि पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तसंयोगानि ॥ १०३ ॥ अवशेषाणि नक्षत्राणि पञ्चदश त्रिंशन्मुहूर्त्तसंयोगानि । चन्द्रे एष योगो नक्षत्राणां ज्ञातव्यः ॥ १०४ ॥ अभिजित् षट् च मुहूर्त्तान् चतुरश्च केवलानहोरात्रान् । सूर्येण समं व्रजति अतः शेषाणां वक्ष्ये ॥ १०५ ॥ शतभि-

ज्योतिष्काः
॥ ८२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

---------- मूलं [१०६]----------

प्रत सूत्रांक ||१०६||

दीप अनुक्रम [१०६]

छऽहोरत्ते इक्कवीसं मुहुत्ते य ॥ १०६ ॥ १०३४ ॥ तिन्नेव उत्तराइं पुणव्वसू रोहिणी विसाहा य। वच्चंति मुहुत्ते तिन्नि चेव वीसवऽहोरत्ते ॥ १०७ ॥ १०३५ ॥ अवसेसा नक्खत्ता पण्णरसवि सूरसहगया जंति । बारस चेव मुहुत्ते तेरस य समे अहोरत्ते ॥ १०८ ॥ १०३६ ॥ दो चंदा दो सूरा नक्खत्ता खलु हवंति छप्पन्ना । छावत्तरं गहसयं जंबुद्दीवे वियारीणं ॥ १०९ ॥ १०३७ ॥ इक्कं च सयसहस्सं तित्तीसं खलु भवे सहस्साइं । नव य सया पण्णासा तारागणकोडिकोडीणं ॥ ११० ॥ १०३८ ॥ चत्तारि चेव चंदा चत्तारि य सूरिया लवणजले । बारं नक्खत्तसयं गहाण तिन्नेव बावन्ना ॥ १११ ॥ १०३९ ॥ दो चेव सयसहस्सा सत्तट्ठिं खलु भवे सहस्साइं । नव य सया लवणजले तारागणकोडिकोडीणं ॥ ११२ ॥ १०४० ॥ चउवीसं ससिरविणो नक्खत्तसया य तिण्णि छत्तीसा । इक्कं च गहसहस्सं छप्पन्नं धायईसंडे ॥ ११३ ॥ १०४१ ॥ अट्ठेव सयसहस्सा

पग् भरणी आर्द्राऽश्लेषा स्वातिर्ज्येष्ठा । व्रजन्ति षडहोरात्रान् एकविंशतिं मुहूर्त्तान् ॥ १०६ ॥ त्रीण्येवोत्तराणि पुनर्वसू रोहिणी विशाखा च । व्रजन्ति त्रीनेव मुहूर्त्तान् विंशतिं चाहोरात्रान् ॥ १०७ ॥ अवशेषाणि नक्षत्राणि पञ्चदशाऽपि सूर्यसहगतानि यान्ति । द्वादशैव मुहूर्त्तान् त्रयोदश च समानहोरात्रान् ॥ १०८ ॥ द्वौ चन्द्रौ द्वौ सूर्यौ नक्षत्राणि खलु भवन्ति षट्पञ्चाशत् । षट्सप्तत्यधिकं ग्रहशतं जम्बूद्वीपे विचारि ॥१०९॥ एकं च शतसहस्रं त्रयस्त्रिंशत्खलु भवन्ति सहस्राणि । नव च शतानि पञ्चाशच्च तारागणकोटीकोट्यः ॥ ११० ॥ चत्वार एव चन्द्राश्चत्वारश्च सूर्या लवणजले । द्वादशं नक्षत्रशतं ग्रहाणां द्वापञ्चाशदधिकानि त्रीणि शतानि ॥ १११ ॥ द्वे एव शतसहस्रे सप्तषष्टिश्च खलु भवन्ति सहस्राणि । नव च शतानि लवणजले तारकगणकोटीकोटीनाम् ॥ ११२ ॥ चतुर्विंशतिः शशिनो रवयश्च नक्ष-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
||११४||

दीप
अनुक्रम
[११४]

प्रकीर्णकद-शके ९ दे-वेन्दस्तवे ॥ ८३ ॥

तिण्णि सहस्सा य सत्त य सया उ । धायईसंडे दीवे तारागणकोडिकोडीणं ॥ ११४ ॥ १०४२ ॥ बायालीसं चंदा बायालीसं च दिणयरा दित्ता । कालोदहिंमि एए चरंति संबद्धलेसाया ॥ ११५ ॥ १०४३ ॥ नक्खत्त-मिणसहस्सं एगमेव छावत्तरिं च सयमन्नं । छच्च सया छन्नउआ महग्गहाण तिन्नि य सहस्सा ॥११६॥१०४४॥ अट्ठावीसं कालोदहिम्मि बारस य सहस्साइं । नव य सया पन्नासा तारागणकोडिकोडीणं ॥११७॥ १०४५ ॥ चोयालं चंदसयं चोयालं चेव सूरियाण सयं । पुक्खवरम्मि एए चरंति संबद्धलेसाया ॥ ११८ ॥ १०४६ ॥ चत्तारिं च सहस्सा बत्तीसं चेव हुंति नक्खत्ता । छच्च सया बावत्तर महग्गहा बारस सहस्सा ॥११९॥१०४७॥ छन्नउइ सयसहस्सा चोयालीसं भवे सहस्साइं । चत्तारी य सयाइं तारागणकोडिकोडीणं ॥ १२० ॥ १०४८ ॥

ज्योतिष्काः

त्रशतानि च त्रीणि षट्त्रिंशानि । एकं च ग्रहसहस्रं षट्पञ्चाशं धातकीखण्डे ॥ ११३ ॥ अष्टैव शतसहस्राणि त्रीणि सहस्राणि सप्त च शतानि । धातकीखण्डे तारागणकोटीकोटीनाम् ॥ ११४ ॥ द्विचत्वारिंशच्चन्द्राः द्विचत्वारिंशच्च दिनकरा दीप्ताः । कालोदधावेते चरन्ति संबद्धलेश्याकाः ॥ ११५ ॥ नक्षत्राणामेकं सहस्रं षट्सप्ततं शतमेकमन्यच्च । षट् च शतानि षण्णवतानि महाग्रहाणां त्रीणि च सहस्राणि ॥११६॥ अष्टाविंशतिर्लक्षाः कालोदधौ द्वादश च सहस्राणि । नव च शतानि पञ्चाशच्च तारागणकोटीकोटीनाम् ॥११७॥ चतुश्चत्वारिंशं चन्द्रशतं चतुश्चत्वारिंशमेव सूर्याणां शतम् । पुष्करवरे एते चरन्ति संबद्धलेश्याकाः ॥ ११८ ॥ चत्वारि च सहस्राणि द्वात्रिंशान्येव भवन्ति नक्षत्राणि । षट् च शतानि द्वासप्ततानि महाग्रहा द्वादश सहस्राणि ॥ ११९ ॥ षण्णवतिः शतसहस्राणि चतुश्चत्वारिं-

॥ ८३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

---------- मूलं [१२१]----------

प्रत सूत्रांक ||१२१||

दीप अनुक्रम [१२१]

बावत्तरिं च चंदा बावत्तरिमेव दिणयरा दित्ता । पुक्खरवरदीवड्ढे चरंति एए पगासिंता ॥ १२१ ॥ १०४९ ॥ तिण्णि सया छत्तीसा छच्च सहस्सा महग्गहाणं तु । नक्खत्ताणं तु भवे सोलाणि दुवे सहस्साणि ॥ १२२ ॥ ॥ १०५० ॥ अडयालीसं लक्खा बावीसं खलु भवे सहस्साइं । दो अ सय पुक्खरद्धे तारागणकोडिकोडीणं ॥ १२३ ॥ १०५१ ॥ बत्तीसं चंदसयं बत्तीसं चेव सूरियाण सयं । सयलं मणुस्सलोयं चरंति एए पयासिंता ॥ १२४॥१०५२ ॥ इक्कारस य सहस्सा छप्पिय सोला महग्गहसया उ । छच्च सया छन्नउआ नक्खत्ता तिण्णि य सहस्सा ॥ १२५ ॥ १०५३ ॥ अट्ठासीइ चत्ताइं सयसहस्साइं मणुयलोगम्मि । सत्त य सयामणूणा तारागणकोडिकोडीणं ॥ १२६ ॥ १०५४ ॥ एसो तारापिंडो सव्वसमासेण मणुयलोगम्मि । बहिया पुण ताराओ जिणेहिं भणिया असंखिज्जा ॥ १२७ ॥ १०५५ ॥ एवइयं तारग्गं जं भणियं मणुयलोग(मज्झ)म्मि । चारं

शत भवन्ति शतसहस्राणि । चत्वारि च शतानि तारागणकोटीकोटीनाम् ॥ १२० ॥ द्वासप्ततिश्च चन्द्रा द्वासप्ततिरेव दिनकरा दीप्ताः । पुष्करवरद्वीपार्द्धे चरन्त्येते प्रकाशयन्तः ॥ १२१ ॥ त्रीणि शतानि षट्त्रिंशानि षट् च सहस्राणि तु महाग्रहाणाम् । नक्षत्राणां तु भवतः षोडशे द्वे सहस्रे ॥ १२२ ॥ अष्टचत्वारिंशल्लक्षा द्वाविंशतिश्च खलु भवन्ति सहस्राणि । द्वे च शते पुष्करार्द्धे तारकगणकोटीकोटीनाम् ॥ १२३ ॥ द्वात्रिंशं चन्द्रशतं द्वात्रिंशमेव सूर्याणां शतम् । सकलं मनुष्यलोकं चरत्येतत् प्रकाशयत् ॥ १२४ ॥ एकादश च सहस्राणि षोडशाधिकानि षट्शतानि महाग्रहाः । षट् शतानि षण्णवतानि नक्षत्राणि त्रीणि च सहस्राणि ॥ १२५ ॥ चत्वारिंशत्सहस्राधिकानि अष्टाशीतिः शतसहस्राणि । मनुजलोके सप्त च शतानि अन्यूनानि तारागणकोटीकोटीनाम् ॥ १२६ ॥ एष तारापिण्डः सर्वसमासेन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

---------- मूलं [१२८]----------

प्रत सूत्रांक ||१२८||

दीप अनुक्रम [१२८]

प्रकीर्णकदशके ९ देवेन्द्रस्तवे ॥ ८४ ॥

कलंबुयापुप्फसंठियं जोइसं चरइ ॥ १२८ ॥ १०५६ ॥ रविससिगहनक्खत्ता एवइआ आहिया मणुयलोए । जेसिं नामागोयं न पागया पन्नवेइंति ॥ १२९ ॥ १०५७ ॥ छावट्ठिं पिडयाइं चंदाइच्चाण मणुयलोगम्मि । दो चंदा दो सूरा य हुंति इक्किक्कए पिडये ॥ १३० ॥ १०५८ ॥ छावट्ठिं पिडयाइं नक्खत्ताणं तु मणुयलोगम्मि । छप्पन्नं नक्खत्ता य हुंति इक्किक्कए पिडए ॥ १३१ ॥ १०५९ ॥ छावट्ठी पिडयाणं महग्गहाणं तु मणुयलोगम्मि । छावत्तरं गहसयं च होइ इक्किक्कए पिडए ॥ १३२ ॥ १०६० ॥ चत्तारि य पंतीओ चंदाइच्चाण मणुयलोगम्मि । छावट्ठिं छावट्ठिं होइ इक्किक्कया पंती ॥ १३३ ॥ १०६१ ॥ छप्पन्नं पंतीणं नक्खत्ताणं तु मणुयलोगम्मि । छावट्ठिं छावट्ठिं च होइ इक्किक्कया पंती ॥ १३४ ॥ १०६२ ॥ छावत्तरं गहाणं पंतिसयं होइ मणुय-

नरलोके ज्योतिष्काः

मनुजलोके । बहिस्तात्पुनस्तारका जिनैर्भणिता असङ्ख्येयाः ॥ १२७ ॥ एतावत्ताराग्रं यद्भणितं मनुजलोकमध्ये । कदम्बकपुष्पसंस्थितं ज्योतिश्चारं चरति ॥ १२८ ॥ रविशशिग्रहनक्षत्राण्येतावन्त्याख्यातानि मनुजलोके । येषां नामगोत्रं न प्राकृताः प्रज्ञापयन्ति ॥ १२९ ॥ षट्षष्टिः पिटकानि चन्द्रादित्ययोर्मनुजलोके । द्वौ चन्द्रौ द्वौ सूर्यौ च भवन्त्येकैकस्मिन् पिटके ॥ १३० ॥ षट्षष्टिः पिटकानि नक्षत्राणां तु मनुजलोके । षट्पञ्चाशन्नक्षत्राणि च भवन्त्येकैकस्मिन् पिटके ॥ १३१ ॥ षट्षष्टिः पिटकानि महाग्रहाणां तु मनुजलोके । षट्सप्तत्यधिकं ग्रहशतं च भवत्येकैकस्मिन् पिटके ॥१३२॥ चतस्रश्च पङ्क्तयश्चन्द्रादित्यानां मनुजलोके । षट्षष्टिः षट्षष्टिर्भवन्त्येकैकस्यां पङ्क्तौ ॥१३३॥ षट्पञ्चाशत् पङ्क्तयो नक्षत्राणां तु मनुजलोके । षट्षष्टिः २ भवन्त्येकैकस्यां पङ्क्तौ ॥ १३४ ॥ षट्सप्ततं ग्रहाणां पङ्क्तिशतं भवति मनुज-

॥ ८४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ||१३५||

दीप अनुक्रम [१३५]

लोगम्मि । छावट्ठिं छावट्ठिं च होइ इक्किक्कया पंती ॥ १३५ ॥ १०६३ ॥ ते मेरुमाणुसुत्तर पयाहिणावत्तमंडला सव्वे । अणवट्ठिएहिं जोएहिं चंदा सूरा गहगणा य ॥ १३६ ॥ १०६४ ॥ नक्खत्ततारयाणं अवट्ठिया मंडला मुणेयव्वा । तेवि य पयाहिणावत्तमेव मेरुं अणुचरंति ॥ १३७ ॥ १०६५ ॥ रयणियरदिणयराणं उड्ढमहे एव संकमो नत्थि । मंडलसंकमणं पुण अब्भिंतरबाहिरं तिरियं ॥ १३८ ॥ १०६६ ॥ रयणियरदिणयराणं नक्खत्ताणं च महग्गहाणं च । चारविसेसेण भवे सुहदुक्खविही मणुस्साणं ॥ १३९ ॥ १०६७ ॥ तेसिं पविसंताणं तावक्खित्ते उ वड्ढए नियमा । तेणेव कमेण पुणो परिहायइ निक्खमिन्ताणं ॥ १४० ॥ १०६८ ॥ तेसिं कलंबुयापुप्फसंठिया हुंति तावक्खित्तमुहा । अंतो अ संकुला बाहिं च वित्थडा चंदसूराणं ॥ १४१ ॥ १०६९ ॥ केणं वड्ढइ चंदो? परिहाणी केण होइ चंदस्स? । कालो वा जुण्हा वा केणऽणुभावेण चंदस्स ? ॥ १४२ ॥

लोके । षट्षष्टिः २ भवन्त्येकैकस्यां पङ्क्तौ ॥ १३५ ॥ ते मेरुमानुषोत्तरयोः प्रदक्षिणावर्त्तमण्डलाः सर्वे । अनवस्थितैर्योगैश्चन्द्राः सूर्या ग्रहगणाश्च ॥ १३६ ॥ नक्षत्रतारकाणामवस्थितानि मण्डलानि ज्ञातव्यानि । तेऽपि च प्रदक्षिणावर्त्तमेव मेरुमनुचरन्ति ॥ १३७ ॥ रजनीकरदिनकराणामूर्द्ध्वमधश्च सङ्क्रमो नास्ति । मण्डलसङ्क्रमणं पुनरभ्यन्तरबाह्येषु तिरश्चि ॥ १३८ ॥ रजनीकरदिनकराणां नक्षत्राणां महाग्रहाणां च । चारविशेषेण भवति सुखदुःखविधिर्मनुष्याणाम् ॥ १३९ ॥ तेषु प्रविशत्सु तापक्षेत्रं तु वर्द्धते नियमात् । तेनैव क्रमेण पुनः परिहीयते निष्क्रामत्सु ॥ १४० ॥ तेषां कदम्बकपुष्पसंस्थितानि भवन्ति तापक्षेत्रमुखानि । अन्तश्च सङ्कटानि बहिश्च विस्तृतानि चन्द्रसूर्याणाम् ॥ १४१ ॥ केन चन्द्रो वर्द्धते ? परिहाणिः केन भवति चन्द्रस्य ? । कालिमा वा ज्योत्स्ना वा केनानुभावेन चन्द्रस्य ? ॥ १४२ ॥

च. स. १५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

---------- मूलं [१४३]----------

प्रत सूत्रांक ||१४३||

दीप अनुक्रम [१४३]

प्रकीर्णकदशके ९ देवेन्दस्तवे ॥ ८५ ॥

॥ १०७० ॥ किण्हं राहुविमाणं निच्चं चंदेण होइ अविरहियं । चउरंगुलमप्पत्तं हिट्ठा चंदस्स तं चरइ ॥१४३॥
॥१०७१॥ छावट्ठिं छावट्ठिं दिवसे दिवसे उ सुक्कपक्खस्स । जं परिवड्ढइ चंदो खवेइ तं चेव कालेणं ॥१४४॥१०७२॥
पन्नरसइ भागेण य चंदं पन्नरसमेव चंकमइ । पन्नरसइभागेण य पुणोवि तं चेव पक्कमइ ॥ १४५ ॥ १०७३ ॥
एवं वड्ढइ चंदो परिहाणी एव होइ चंदस्स । कालो वा जुण्हा वा तेण य(ऽणु) भावेण चंदस्स ॥१४६॥१०७४॥
अंतो मणुस्सखेत्ते हवंति चारोवगा य उववण्णा । पंचविहा जोइसिया चंदा सूरा गहगणा य ॥१४७॥१०७५॥
तेण परं जे सेसा चंदाइच्च गहतारनक्खत्ता । नत्थि गई नवि चारो अवट्ठिया ते मुणेयव्वा ॥ १४८ ॥ १०७६ ॥
दो चंदा इह दीवे चत्तारि य सागरे लवणतोए । धायइसंडे दीवे बारस चंदा य सूरा य ॥ १४९ ॥ १०७७ ॥
एगे जंबुद्दीवे दुगुणा लवणे चउग्गुणा हुंति । कालोयए तिगुणिया ससिसूरा धायईसंडे ॥ १५० ॥ १०७८ ॥

कृष्णं राहुविमानं नित्यं चन्द्रेण भवत्यविरहितम् । चतुरङ्गुलान्यप्राप्तमधस्ताच्चन्द्रस्य तच्चरति ॥ १४३ ॥ षट्षष्टिं षट्षष्टिं (भागं) दिवसे दिवसे तु शुक्लपक्षस्य । यत्परिवर्द्धयति चन्द्रं क्षपयति तावन्तमेव कृष्णस्य ॥ १४४ ॥ पञ्चदशभागेन च चन्द्रस्य पञ्चदशभागमेवाक्रामति । पञ्चदशभागेन च पुनरपि तत एव प्रक्राम्यति ॥१४५॥ एवं वर्द्धते चन्द्रः परिहाणिरेव भवति चन्द्रस्य । कालिमा वा ज्योत्स्ना वा तेन च भावेन चन्द्रस्य ॥ १४६ ॥ अन्तर्मनुष्यक्षेत्रे भवन्ति चारोपगाश्चो(श्चारो)पपन्नाः । पंचविधा ज्योतिषिकाः, चंद्राः सूर्या ग्रहगणाश्च ॥१४७॥ ततः परं ये शेषाश्चन्द्रादित्या ग्रहास्तारका नक्षत्राणि । नास्ति गतिर्नैव चारः अवस्थितास्ते ज्ञातव्याः ॥ १४८ ॥ द्वौ चन्द्राविह द्वीपे चत्वारश्च सागरे लवणतोये । धातकीखण्डे द्वीपे द्वादश चन्द्राश्च सूर्याश्च ॥ १४९ ॥ एको जम्बूद्वीपे द्विगुणा लवणे चतुर्गुणा भवन्ति ।

ज्योतिष्काधिकारः ॥ ८५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
||१५१||

दीप
अनुक्रम
[१५१]

धायइसंडप्पभिई उद्दिट्ठा तिगुणिया भवे चंदा । आइल्लचंदसहिया अणंतराणंतरे खित्ते ॥ १५१ ॥ १०७९ ॥ रिक्खग्गहतारग्गा दीवसमुद्दाण इच्छसे नाउं । तस्स ससीहि उ गुणियं रिक्खग्गहतारयग्गं तु ॥ १५२ ॥ ॥ १०८० ॥ बहिया उ माणुसनगस्स चंदसूराणऽवट्ठिया जोगा । चंदा अभीइजुत्ता सूरा पुण हुंति पुस्सेहिं ॥ १५३ ॥ १०८१ ॥ चंदाओ सूरस्स य सूरा ससिणो य अंतरं होइ । पण्णाससहस्साइं जोयणाणं अणूणाइं ॥ १५४ ॥ १०८२ ॥ सूरस्स य सूरस्स य ससिणो ससिणो य अंतरं होइ । बहिया उ माणुसनगस्स जोअणाणं सयसहस्सं ॥ १५५ ॥ १०८३ ॥ सूरंतरिया चंदा चंदंतरिया उ दिणयरा दित्ता । चित्तंतरलेसागा सुहलेसा मंदलेसा य ॥ १५६ ॥ १०८४ ॥ अट्ठासीयं च गहा अट्ठावीसं च हुंति नक्खत्ता । एगससीपरिवारो एत्तो ताराण वुच्छामि ॥ १५७ ॥ १०८५ ॥ छावट्ठि सहस्साइं नव चेव सयाइं पंचसयराइं । एगससीपरिवारो

कालोदे त्रिगुणिताः शशिसूर्या धातकीखण्डे ॥ १५० ॥ धातकीखण्डात् प्रभृति उद्दिष्टास्त्रिगुणिता भवेयुश्चन्द्राः । आदिमचन्द्रसहिता अनन्तरानन्तरे क्षेत्रे ॥ १५१ ॥ ऋक्षग्रहतारकाग्राणि द्वीपसमुद्रयोरिच्छसि ज्ञातुं । तस्य शशिभिर्गुणितं ऋक्षग्रहतारकाग्रं तु ॥ १५२ ॥ बहिः पुनर्मानुषोत्तरनगात् चन्द्रसूर्ययोरवस्थिता योगाः । चन्द्रा अभिजिता युक्ताः सूर्याः पुनर्भवन्ति पुष्यैः ॥ १५३ ॥ चन्द्रात् सूर्यस्य सूर्यात् शशिनश्चान्तरं भवति । पंचाशत् सहस्राणि योजनानामनूनानि ॥ १५४ ॥ सूर्यस्य सूर्यस्य च शशिनः शशिनश्चान्तरं भवति । बहिस्तात् मानुषनगात् योजनानां शतसहस्रं ॥ १५५ ॥ सूर्यान्तरिताश्चन्द्राः चन्द्रान्तरिताश्च दिनकरा दीप्ताः । चित्रान्तरलेश्याकाः शुभलेश्या मन्दलेश्याश्च ॥ १५६ ॥ अष्टाशीतिश्च ग्रहाः अष्टाविंशतिश्च भवन्ति नक्षत्राणि । एकशशिपरीवारः इतस्तारकाणां वक्ष्ये ॥१५७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

---------- मूलं [१५८]----------

प्रत सूत्रांक ||१५८||

दीप अनुक्रम [१५८]

प्रकीर्णकद-शके ९ दे-वेन्द्रस्तवे ॥ ८६ ॥

तारागणकोडिकोडीणं ॥ १५८ ॥ १०८६ ॥ वाससहस्सं पलिओवमं च सूराण सा ठिई भणिया । पलिओवम चंदाणं वाससयसहस्समब्भहियं ॥ १५९ ॥ १०८७ ॥ पलिओवमं गहाणं नक्खत्ताणं च जाण पलियद्धं । पलियचउत्थो भाओ ताराणवि सा ठिई भणिया ॥ १६० ॥ १०८८ ॥ पलिओवमट्ठभागो ठिई जहण्णा उ जोइसगणस्स । पलिओवममुक्कोसं वाससयसहस्समब्भहियं ॥ १६१ ॥ १०८९ ॥ भवणवइवाणवंतरजोइस-वासी ठिई मए कहिया । कप्पवईवि य वुच्छं बारस इंदे महिड्ढीए ॥ १६२ ॥ १०९० ॥ पढमो सोहम्मवई ईसाणवई उ भन्नए बीओ । तत्तो सणंकुमारो हवइ चउत्थो उ माहिंदो ॥ १६३ ॥ १०९१ ॥ पंचमए पुण बंभो छट्ठो पुण लंतओऽत्थ देविंदो । सत्तमओ महसुक्को अट्ठमओ भवे सहस्सारो ॥ १६४ ॥ १०९२ ॥ नवमो अ आणइंदो दसमो उण पाणउऽत्थ देविंदो । आरण इक्कारसमो बारसमो अच्चुए इंदो ॥१६५॥ १०९३ ॥ एए

ज्योतिष्क-स्थितिः कल्पाश्च

षट्षष्टिः सहस्राणि नव चैव शतानि पंचसप्ततानि । एकशशिपरीवारस्तारकगणकोटीकोटीनां ॥ १५८ ॥ वर्षसहस्रं पल्योपमं च सूर्याणां सा स्थितिर्भणिता । पल्योपमं चन्द्राणां वर्षशतसहस्राभ्यधिकम् ॥ १५९ ॥ पल्योपमं ग्रहाणां नक्षत्राणां च जानीहि पल्योपमार्धं । पल्य-चतुर्थो भागस्तारकाणां सा स्थितिर्भणिता ॥ १६० ॥ पल्योपमाष्टभागः स्थितिर्जघन्या तु ज्योतिष्कगणस्य । पल्योपममुत्कृष्टं वर्षशतसह-स्राभ्यधिकं ॥ १६१ ॥ भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवासिनां स्थितिर्मया कथिता । कल्पपतीनपि वक्ष्ये द्वादशेन्द्रान् महर्द्धिकान् ॥ १६२ ॥ प्रथमः सौधर्मपतिरीशानपतिस्तु भण्यते द्वितीयः । ततः सनत्कुमारो भवति चतुर्थस्तु माहेन्द्रः ॥१६३॥ पंचमकः पुनर्ब्रह्मा षष्ठः पुनर्लान्त-कोऽत्र देवेन्द्रः । सप्तमस्तु महाशुक्रोऽष्टमो भवेत्सहस्रारः ॥ १६४ ॥ नवमश्चानतेन्द्रो दशमः पुनः प्राणतोऽत्र देवेन्द्रः । आरण एकाद-

॥ ८६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ वैमानिक-अधिकारः आरभ्यते

प्रत सूत्रांक ||१६६||

दीप अनुक्रम [१६६]

बारस इंदा कप्पवई कप्पसामिया भणिया । आणाईसरियं वा तेण परं नत्थि देवाणं ॥ १६६ ॥ १०९४ ॥
तेण परं देवगणा सयइच्छियभावणाइ उववन्ना । गेविज्जेहिं न सक्को उववाओ अन्नलिंगेणं ॥ १६७ ॥ १०९५ ॥
जे दंसणवावन्ना लिंगग्गहणं करंति सामण्णे । तेसिंपिय उववाओ उक्कोसो जाव गेविज्जा ॥ १६८ ॥ १०९६ ॥
इत्थ किर विमाणाणं बत्तीसं वण्णिया सयसहस्सा । सोहम्मकप्पवइणो सक्कस्स महाणुभागस्स ॥ १६९ ॥
॥ १०९७ ॥ ईसाणकप्पवइणो अट्ठावीसं भवे सयसहस्सा । बारस्स सयसहस्सा कप्पम्मि सणंकुमारम्मि
॥ १७० ॥ १०९८ ॥ अट्ठेव सयसहस्सा माहिंदंमि उ भवंति कप्पम्मि । चत्तारि सयसहस्सा कप्पम्मि उ
बंभलोगम्मि ॥ १७१ ॥ १०९९ ॥ इत्थ किर विमाणाणं पन्नासं लंतए सहस्साइं । चत्तारि महासुक्के छच
सहस्सा सहस्सारे ॥ १७२ ॥ ११०० ॥ आणयपाणयकप्पे चत्तारि सया ऽऽरणच्चुए तिन्नि । सत्त विमाणस-

शो द्वादशोऽच्युत इन्द्रः ॥ १६५ ॥ एते द्वादश इन्द्राः कल्पपतयः कल्पस्वामिनो भणिताः । आज्ञा ऐश्वर्यं वा ततः परं नास्ति देवानां ॥ १६६ ॥ ततः परं देवगणाः स्वकेप्सितभावनायामुत्पन्नाः । ग्रैवेयकेषु न शक्योऽन्यलिंगेनोपपातः ॥ १६७ ॥ ये व्यापन्नदर्शना लिंगग्रहणं कुर्वन्ति श्रामण्ये । तेषामपि चोपपात उत्कृष्टो यावद् ग्रैवेयके ॥ १६८ ॥ अत्र किल विमानानां द्वात्रिंशद्वर्णितानि शतसहस्राणि । सौधर्मकल्पपतेः शक्रस्य महानुभागस्य ॥ १६९ ॥ ईशानकल्पपतेरष्टाविंशतिर्भवन्ति शतसहस्राणि । द्वादश शतसहस्राणि कल्पे सनत्कुमारे ॥ १७० ॥ अष्टैव शतसहस्राणि माहेन्द्रे तु भवन्ति कल्पे । चत्वारि शतसहस्राणि कल्पे तु ब्रह्मलोके ॥ १७१ ॥ अत्र किल विमानानां पंचाशत् लान्तके सहस्राणि । चत्वारिंशत् महाशुक्रे षट् च सहस्राणि सहस्रारे ॥ १७२ ॥ आनतप्राणतकल्पयोश्चत्वारि शतानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

---------- मूलं [१७३]----------

प्रत सूत्रांक ||१७३||

दीप अनुक्रम [१७३]

प्रकीर्णकदशके ९ देवेन्दस्तवे ॥ ८७ ॥

याइं चउसुवि एएसु कप्पेसु ॥ १७३ ॥ ११०१ ॥ एयाइ विमाणाइं कहियाइं जाइं जत्थ कप्पम्मि । कप्पवई-णवि सुंदरि! ठिईविसेसे निसामेहि ॥ १७४ ॥ ११०२ ॥ दो सागरोवमाइं सक्कस्स ठिई महाणुभागस्स । साहीया ईसाणे सत्तेव सणंकुमारम्मि ॥ १७५ ॥ ११०३ ॥ माहिंदे साहियाइं सत्त दस चेव बंभलोगम्मि । चउदस लंतइ कप्पे सत्तरस भवे महासुक्के ॥ १७६ ॥ ११०४ ॥ कप्पम्मि सहस्सारे अट्ठारसु सागरोवमाइं ठिई । एगूणाऽऽणयकप्पे वीसा पुण पाणए कप्पे ॥ १७७ ॥ ११०५ ॥ पुण्णा य इक्कवीसा उदहिसनामाण आरणे कप्पे । अह अच्चुयम्मि कप्पे बावीसं सागराण ठिई ॥ १७८ ॥ ११०६ ॥ एसा कप्पवईणं कप्पठिई वण्णिया समासेणं । गेविज्जऽणुत्तराणं सुण अणुभागं विमाणाणं ॥ १७९ ॥ ११०७ ॥ तिण्णेव य गेविज्जा हिट्ठिल्ला मज्झिमा य उवरिल्ला । इक्किक्कंपि य तिविहं नव एवं हुंति गेविज्जा ॥१८०॥११०८॥ सुदंसणा अमोहा य,

कल्पेषु विमानाः स्थितिः

आरणाच्युतयोस्त्रीणि । सप्त विमानशतानि चतुर्ष्वपि एतेषु कल्पेषु ॥ १७३ ॥ एतानि विमानानि कथितानि यानि यत्र कल्पे । कल्पपतीनामपि सुन्दरि! स्थितिविशेषान् निशमय ॥ १७४ ॥ द्वे सागरोपमे शक्रस्य स्थितिर्महानुभागस्य । साधिके ईशाने सप्तैव सनत्कुमारे ॥ १७५ ॥ माहेन्द्रे साधिकानि सप्त दशैव ब्रह्मलोके । चतुर्दश लान्तके कल्पे सप्तदश भवन्ति महाशुक्रे ॥ १७६ ॥ कल्पे सहस्रारे अष्टादश सागरोपमाणि स्थितिः । एकोनविंशतिरानतकल्पे विंशतिः पुनः प्राणते कल्पे ॥ १७७ ॥ पूर्णा एकविंशतिः उदधिसनाम्नां आरणे कल्पे । अथाच्युते कल्पे द्वाविंशतिः सागरोपमाणां स्थितिः ॥ १७८ ॥ एषा कल्पपतीनां कल्पस्थितिर्वर्णिता समासेन । ग्रैवेयकानुत्तराणां शृणु अनुभागं विमानानां ॥ १७९ ॥ त्रीण्येव ग्रैवेयकाणि अधस्तनानि मध्यमान्युपरितनानि च । एकैकस्मिंश्च त्रिविधानि नवैवं भवन्ति

॥ ८७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ||१८१||

दीप अनुक्रम [१८१]

सुप्पबुद्धा जसोधरा । वच्छा सुवच्छा सुमणा, सोमणसा पियदंसणा ॥ १८१ ॥ ११०९ ॥ एक्कारसुत्तरं हेट्ठि-
मए सत्तुत्तरं च मज्झिमए । सयमेगं उवरिमए पंचेव अणुत्तरविमाणा ॥ १८२ ॥ १११० ॥ हेट्ठिमगेविज्जाणं
तेवीसं सागरोवमाइं ठिई। इक्किक्कमारुहिज्जा अट्ठहिं सेसेहिं नमियंगी ! ॥ १८३ ॥ १११११ ॥ विजयं च वेजयंतं
जयंतमपराजियं च बोद्धव्वं । सव्वट्ठसिद्धनामं होइ चउण्हं तु मज्झिमयं ॥ १८४ ॥ १११२ ॥ पुव्वेण होइ विजयं दाहि-
णओ होइ वेजयंतं तु । अवरेणं तु जयंतं अवराइयमुत्तरे पासे ॥ १८५ ॥ १११३ ॥ एएसु विमाणेसु उ तित्तीसं
सागरोवमाइं ठिई । सव्वट्ठसिद्धनामे अजहन्नुक्कोस तित्तीसा ॥ १८६ ॥ १११४ ॥ हिट्ठिल्ला उवरिल्ला दो दो
जुयलऽद्धचंदसंठाणा। पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिया मज्झिमा चउरो ॥ १८७ ॥ १११५ ॥ गेविज्जाऽऽवलिसरिसा

ग्रैवेयकाणि ॥ १८० ॥ सुदर्शनः अमोघः सुप्रबुद्धो यशोधरः । वक्षाः सुवक्षाः सुमनाः सौमनसः प्रियदर्शनः ॥ १८१ ॥ अधस्तने
एकादशोत्तरं शतं सप्तोत्तरं शतं च मध्ये । शतमेकं उपरितने पंचैवानुत्तरविमानानि ॥ १८२ ॥ अधस्तनाधस्तनग्रैवेयकानां त्रयोविं-
शतिः सागरोपमाणि स्थितिः । एकैकं वर्धयेत् अष्टसु शेषेषु नमितांगि ! ॥ १८३ ॥ विजयं च वैजयंतं जयन्तमपराजितं च बोद्धव्यं ।
सर्वार्थसिद्धनाम भवति चतुर्णां तु मध्यमं ॥ १८४ ॥ पूर्वस्यां भवति विजयं दक्षिणतो भवति वैजयंतं तु । अपरस्यां तु जयन्तं अपरा-
जितमुत्तरे पार्श्वे ॥ १८५ ॥ एतेषु विमानेषु तु त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः । सर्वार्थसिद्धनाम्नि अजघन्योत्कृष्टा त्रयस्त्रिंशत्सागरो-
पमाणि ॥१८६॥ अधस्तने उपरितने च द्वे द्वे युगले अर्धचन्द्रसंस्थाने । प्रतिपूर्णचन्द्रसंस्थानसंस्थिता मध्यमाश्चत्वारः (कल्पाः) ॥१८७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
||१८८||

दीप
अनुक्रम
[१८८]

प्रकीर्णकदशके ९ देवेन्द्रस्तवे ॥ ८८ ॥

गेविज्जा तिण्णि तिण्णि आसन्ना । हुडुयसंठाणाइं अणुत्तराइं विमाणाइं ॥ १८८ ॥ ११११६ ॥ घणउदहिपइट्ठाणा सुरभवणा दोसु हुंति कप्पेसुं । तिसु वाउपइट्ठाणा तदुभयसुपइट्ठिया तिन्नि ॥ १८९ ॥ १११७ ॥ तेण परं उवरिमया आगासंतरपइट्ठिया सव्वे । एस पइट्ठाणविही उड्ढं लोए विमाणाणं ॥ १९० ॥ १११८ ॥ किण्हा नीला काऊ तेऊलेसा य भवणवंतरिया । जोइससोहम्मीसाणं तेउलेसा मुणेयव्वा ॥ १९१ ॥ १११९ ॥ कप्पे सणंकुमारे माहिंदे चेव बंभलोए य । एएसु पम्हलेसा तेण परं सुक्कलेसा उ ॥ १९२ ॥ ११२० ॥ कणगत्तयरत्ताभा सुरवसभा दोसु हुंति कप्पेसु । तिसु हुंति पम्हगोरा तेण परं सुक्किल्ला देवा ॥ १९३ ॥ ११२१ ॥ भवणवइवाणमंतरजोइसिया हुंति सत्तरयणीया । कप्पवईणऽइसुंदरि ! सुण उच्चत्तं सुरवराणं ॥१९४॥११२२॥ सोहम्मीसाणसुरा उच्चत्ते हुंति सत्तरयणीया । दो दो कप्पा तुल्ला दोसुवि परिहायए रयणी ॥ १९५ ॥ ११२३ ॥

ग्रैवेयकावलिसदृशानि ग्रैवेयकाणि त्रीणि त्रीणि आसन्नानि । हुडुकसंस्थानानि अनुत्तराणि विमानानि ॥ १८८ ॥ घनोदधिप्रतिष्ठानानि सुरभवनानि द्वयोर्भवन्ति कल्पयोः । त्रिषु वायुप्रतिष्ठानानि तदुभयसुप्रतिष्ठितान्युपरि त्रिषु ॥ १८९ ॥ ततः परमुपरितनानि आकाशान्तरप्रतिष्ठितानि सर्वाणि । एष प्रतिष्ठानविधिः ऊर्ध्वलोके विमानानां ॥ १९० ॥ कृष्णा नीला कापोती तेजोलेश्या च भवनपतिव्यन्तराणां । ज्योतिष्कसौधर्मेशानानां तेजोलेश्या ज्ञातव्या ॥ १९१ ॥ कल्पे सनत्कुमारे माहेन्द्रे चैव ब्रह्मलोके च । एतेषु पद्मलेश्या ततः परं शुक्ललेश्या तु ॥१९२॥ कनकत्वग्रक्ताभाः सुरवृषभा भवन्ति द्वयोः कल्पयोः । त्रिषु भवन्ति पद्मगौरास्ततः परं शुक्ललेश्याका देवाः ॥१९३॥ भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्का भवन्ति सप्तरत्नयः । कल्पपतीनां अतिसुन्दरि ! शृणूच्चत्वं सुरवराणां ॥ १९४ ॥ सौधर्मेशानसुरा उच्चत्वेन

ग्रैवेयानुत्तराः प्रतिष्ठानं लेश्योच्चत्वे ॥ ८८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ||१९६||

दीप अनुक्रम [१९६]

गेविज्जेसु य देवा रयणीओ दुन्नि हुंति उच्चाओ । रयणी पुण उच्चत्तं अणुत्तरविमाणवासीणं ॥ १९६ ॥ ११२४॥
कप्पाओ कप्पम्मि उ जस्स ठिई सागरोवमब्भहिया । उस्सेहो तस्स भवे इक्कारसभागपरिहीणो ॥ १९७ ॥
॥ ११२५ ॥ जो अ विमाणुस्सेहो पुढवीणं जं च होइ बाहल्लं । दुण्हंपि तं पमाणं बत्तीसं जोयणसयाइं ॥१९८॥
॥ ११२६ ॥ भवणवइवाणमंतरजोइसिया हुंति कायपवियारा । कप्पवईणवि सुंदरि ! वुच्छं पवियारणविही
उ ॥ १९९ ॥ ११२७ ॥ सोहम्मीसाणेसुं सुरवरा हुंति कायपवियारा । सणंकुमारमाहिंदेसु फासपवियारया
देवा ॥ २०० ॥ ११२८ ॥ बंभे लंतयकप्पे सुरवरा हुंति रूवपवियारा । महसुक्कसहस्सारे सद्दपवियारया देवा
॥ २०१ ॥ ११२९ ॥ आणयपाणयकप्पे आरण तह अच्चुए सुकप्पम्मि । देवा मणपवियारा तेण परं चूअप-
वियारा ॥ २०२ ॥ ११३० ॥ गोसीसागुरुकेयइपत्तपुन्नागबउलगंधा य । चंपयकुवलयगंधा तगरेलसुगंधगंधा

भवन्ति सप्त रत्नयः । द्वौ द्वौ कल्पौ तुल्यौ द्वयोरपि परिहीयते रत्निः ॥ १९५ ॥ ग्रैवेयकेषु देवा द्वे द्वे रत्नी भवन्त्युच्चाः । रत्निः पुनरुच्चत्वं
अनुत्तरविमानवासिनां ॥ १९६ ॥ कल्पात् कल्पे तु यस्य स्थितिः सागरोपमेणाधिका । उत्सेधस्तस्य भवेत् एकादशभागपरिहीणः ॥१९७॥
यश्च विमानानामुत्सेधो बाहल्यं यच्च भवति पृथिव्याः । द्वयोरपि तत्प्रमाणं द्वात्रिंशद्योजनशतानि ॥ १९८ ॥ भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्का
भवन्ति कायप्रविचाराः । कल्पपतीनामपि सुंदरि ! वक्ष्ये परिचारणाविधिं ॥ १९९ ॥ सौधर्मेशानयोः सुरवरा भवन्ति कायप्रवीचाराः ।
सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः स्पर्शप्रविचारका देवाः ॥ २०० ॥ ब्रह्मदेवलोके लांतके कल्पे सुरवरा भवन्ति रूपप्रवीचाराः । महाशुक्रसहस्रा-
रयोः शब्दप्रवीचारका देवाः ॥ २०१ ॥ आनतप्राणतकल्पयोरारणे तथा अच्युते सुकल्पे । देवा मनःप्रवीचाराः ततः परं च्युतप्र-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"देवेन्द्रस्तव" - प्रकीर्णकसूत्र-९ (मूलं+संस्कृतछाया)

---------- मूलं [२०३]----------

प्रत
सूत्रांक
||२०३||

दीप
अनुक्रम
[२०३]

प्रकीर्णकदशके ९ देवेन्द्रस्तवे ॥ ८९ ॥

य ॥ २०३ ॥ ११३१ ॥ एसा णं गंधविही उवमाए वण्णिया समासेणं । दिट्ठीएवि य तिविहा थिरसुकुमारा य फासेणं ॥ २०४ ॥ ११३२ ॥ तेवीसं च विमाणा चउरासीइं च सयसहस्साइं । सत्ताणउई सहस्साइं उड्ढलोए विमाणाणं ॥ २०५ ॥ ११३३ ॥ अउणाणउई सहस्सा चउरासीइं च सयसहस्साइं । एगूणयं दिवड्ढं सयं च पुप्फावकिण्णाणं ॥ २०६ ॥ ११३४ ॥ सत्तेव सहस्साइं सयाइं बावत्तराइं अट्ठ भवे । आवलियाइ विमाणा सेसा पुप्फावकिण्णाणं ॥ २०७ ॥ ११३५ ॥ आवलिआइ विमाणाण अंतरं नियमसो असंखिज्जं । संखिज्जमसंखिज्जं भणियं पुप्फावकिन्नाणं ॥ २०८ ॥ ११३६ ॥ आवलियाइ विमाणा वट्टा तंसा तहेव चउरंसा । पुप्फावकिण्णया पुण अणेगविहरूवसंठाणा ॥ २०९ ॥ ११३७ ॥ वट्टं खु वलयगंपिव तंसा सिंघाडयंपिव विमाणा । चउरंसविमाणा पुण अक्खाडयसंठिया भणिया ॥ २१० ॥ ११३८ ॥ पढमं वट्टविमाणं बीयं तंसं

वीचाराः ॥ २०२ ॥ गोशीर्षागुरुकेतकीपत्रपुन्नागबकुलगन्धाश्च । चम्पककुवलयगन्धाः तगरैलासुगन्धिगन्धाश्च ॥ २०३ ॥ एष गन्धविधिरुपमया वर्णितः समासेन । दृष्टाऽपि च त्रि(वि)विधाः स्थिरसुकुमाराश्च स्पर्शेन ॥ २०४ ॥ त्रयोविंशतिश्च विमानानि चतुरशीतिश्च शतसहस्राणि । सप्तनवतिः सहस्राणि ऊर्ध्वलोके विमानानां ॥ २०५ ॥ एकोननवतिः सहस्राणि चतुरशीतिश्च शतसहस्राणि । एकोनं चार्धद्वयशतं च पुष्पावकीर्णानाम् ॥ २०६ ॥ सप्तैव सहस्राणि द्वासप्ततानि शतानि चाष्ट भवंति । आवलिकासु विमानानि शेषाणि पुष्पावकीर्णानि ॥ २०७ ॥ आवलिकायां विमानानामन्तरं नियमेनासंख्येयं (योजनानां) । संख्येयमसंख्येयं भणितं पुष्पावकीर्णानां ॥२०८॥ आवलिकायां विमानानि वृत्तानि त्र्यस्राणि चतुरस्राणि तथैव । पुष्पावकीर्णानि पुनरनेकविधरूपसंस्थानानि ॥ २०९ ॥ वृत्तानि खलु वल-

प्रवीचारः पुष्पावकीर्णाः ॥ ८९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

---------- मूलं [२११]----------

प्रत सूत्रांक ||२११||

दीप अनुक्रम [२११]

तहेव चउरंसं । एगंतरचउरंसं पुणोवि वट्टं पुणो तंसं ॥ २११ ॥ ११३९ ॥ वट्टं वट्टस्सुवरिं तंसं तंसस्स उप्परिं होइ । चउरंसे चउरंसं उड्ढं तु विमाणसेढीओ ॥ २१२ ॥ ११४० ॥ उवलंबयरज्जूओ सव्वविमाणाण हुंति समियाओ । उवरिमचरिमंताओ हिट्ठिल्लो जाव चरिमंतो ॥ २१३ ॥ ११४१ ॥ पागारपरिक्खित्ता वट्टविमाणा हवंति सव्वेवि । चउरंसविमाणाणं चउद्दिसिं वेइया भणिया ॥ २१४ ॥ ११४२ ॥ जत्तो वट्टविमाणं तत्तो तंसस्स वेइया होइ । पागारो बोद्धव्वो अवसेसाणं तु पासाणं ॥ २१५ ॥ ११४३ ॥ जे पुण वट्टविमाणा एगदुवारा हवंति सव्वेवि । तिन्नि य तंसविमाणे चत्तारि य हुंति चउरंसे ॥ २१६ ॥ ११४४ ॥ सत्तेव य कोडीओ हवंति बावत्तरिं सयसहस्सा । एसो भवणसमासो भोमिज्जाणं सुरवराणं ॥ २१७ ॥ ११४५ ॥ तिरिओववा-

यमिव त्र्यस्राणि शृंगाटकमिव विमानानि । चतुरस्रविमानानि पुनः अक्षाटकसंस्थितानि भणितानि ॥ २१० ॥ प्रथमं वृत्तं विमानं द्वितीयं त्र्यस्रं तथैव चतुरस्रं । वृत्तात् एकान्तरेण चतुरस्रं पुनरपि वृत्तं पुनस्त्र्यस्रं ॥ २११ ॥ वृत्तं वृत्तस्योपरि त्र्यस्रं त्र्यस्रस्योपरि भवति । चतुरस्रस्य चतुरस्रं ऊर्ध्वं तु विमानश्रेणयः (एवं) ॥ २१२ ॥ अवलम्बनरज्जवः सर्वविमानानां भवन्ति समाः । उपरितनचरमान्ताद् यावदधस्तनश्चरमान्तः ॥ २१३ ॥ प्राकारपरिक्षिप्तानि वृत्तानि विमानानि भवन्ति सर्वाण्यपि । चतुरस्रविमानानां चतसृषु दिक्षु वेदिका भणिता ॥ २१४ ॥ यतो वृत्तविमानं ततस्त्र्यस्रस्य वेदिका भवति । प्राकारो बोद्धव्यः अवशेषयोस्तु पार्श्वयोः ॥ २१५ ॥ यानि पुनर्वृत्तविमानानि एकद्वाराणि भवन्ति सर्वाण्यपि । त्रीणि च त्र्यस्रविमाने चत्वारि च भवन्ति चतुरस्रे ॥ २१६ ॥ सप्तैव च कोट्यो भवन्ति द्विसप्ततिः शतसहस्राणि । एष भवनसमासो भौमेयकानां सुरवराणां ॥ २१७ ॥ तिर्यगुपपातिकानां भौमानि नगराणि असंख्येयानि । ततः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

---------- मूलं [२१८]----------

प्रत सूत्रांक ||२१८||

दीप अनुक्रम [२१८]

प्रकीर्णकदशके ९ देवेन्दस्तवे ॥ ९० ॥

इयाणं रम्मा भोम्मनगरा असंखिज्जा । तत्तो संखिज्जगुणा जोइसियाणं विमाणा उ ॥ २१८ ॥ ११४६ ॥ थोवा विमाणवासी भोमिज्जा वाणमंतरमसंखा । तत्तो संखिज्जगुणा जोइसवासी भवे देवा ॥ २१९ ॥ ११४७ ॥ पत्तेयविमाणाणं देवीणं छब्भवे सयसहस्सा । सोहम्मे कप्पम्मि उ ईसाणे हुंति चत्तारि ॥ २२० ॥ ११४८ ॥ पंचेवणुत्तराइं अणुत्तरगईहिं जाइं दिट्ठाइं । जत्थ अणुत्तरदेवा भोगसुहमणुवमं पत्ता ॥ २२१ ॥ ११४९ ॥ जत्थ अणुत्तरगंधा तहेव रूवा अणुत्तरा सद्दा । अचित्तपुग्गलाणं रसो अ फासो अ गंधो अ ॥२२२॥११५०॥ पप्फोडियकलिकलुसा पप्फोडियकमलरेणुसंकासा । वरकुसुममहुकरा इव सुहुमयरं नंदि (दंति) घोइंति ॥ २२३ ॥ ११५१ ॥ वरपउमगब्भगोरा सव्वे ते एगगब्भवसहीओ । गब्भवसहीविमुक्का सुंदरि ! सुक्खं अणुहवंति ॥ २२४ ॥ ११५२ ॥ तेतीसाए सुंदरि! वाससहस्सेहिं होइ पुण्णेण । आहाराऽवहि देवाणऽणुत्तरवि-

वृत्तादीनि अल्पबहुत्वं

संख्येयगुणानि ज्योतिष्काणां विमानानि ॥ २१८ ॥ स्तोका विमानवासिनो भौमेया व्यन्तरा असंख्येयाः । ततः संख्येयगुणा ज्योतिष्कवासिनो भवन्ति देवाः ॥ २१९ ॥ प्रत्येकं वैमानिकानां देवीनां षट् भवन्ति शतसहस्राणि । सौधर्मे कल्पे तु ईशाने भवन्ति चत्वारि शतसहस्राणि ॥ २२० ॥ पंचैवानुत्तराणि अनुत्तरगतिभिर्यानि दृष्टानि । यत्रानुत्तरदेवा भोगसुखमनुपमं प्राप्ताः ॥ २२१ ॥ यत्र अनुत्तरगन्धास्तथैव रूपाणि अनुत्तराणि शब्दाश्च । अचित्तपुद्गलानां रसश्च स्पर्शश्च गन्धश्च ॥ २२२ ॥ प्रस्फोटितकलिकालुष्याः प्रस्फुटितकमलरेणुसंकाशाः । वरकुसुममधुकरा इव सूक्ष्मतरं नन्दिं घोषयन्ति (आस्वादयन्ति)॥२२३॥ वरपद्मगर्भगौराः सर्वे ते एकगर्भवसतयः । गर्भवसतिविमुक्ताः सुन्दरि ! सौख्यमनुभवन्ति ॥ २२४ ॥ त्रयस्त्रिंशति पूर्णायां वर्षसहस्राणां सुन्दरि ! पुण्येन । आहारावधिर्देवानां अनुत्तरविमानवा-

॥ ९० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ||२२५||

दीप अनुक्रम [२२५]

माणवासिणं ॥ २२५ ॥ ११५३ ॥ सोलसहि सहस्सेहिं पंचेहिं सएहिं होइ पुण्णेहिं । आहारो देवाणं मज्झिममाउं धरिंताणं ॥ २२६ ॥ ११५४ ॥ दस वाससहस्साइं जहन्नमाउं धरंति जे देवा । तेसिंपि य आहारो चउत्थभत्तेण बोद्धव्वो ॥ २२७ ॥ ११५५ ॥ संवच्छरस्स सुंदरि! मासाणं अद्धपंचमाणं च । उस्सासो देवाणं अणुत्तरविमाणवासीणं ॥ २२८ ॥ ११५६ ॥ अद्धट्ठमेहिं राइंदिएहिं अट्ठहि य सुतणु ! मासेहिं । उस्सासो देवाणं मज्झिममाउं धरिंताणं ॥ २२९ ॥ ११५७ ॥ सत्तण्हं थोवाणं पुण्णाणं पुण्णइंदुसरिसमुहे ! । ऊसासो देवाणं जहन्नमाउं धरिंताणं ॥ २३० ॥ ११५८ ॥ जइ सागरोवमाइं जस्स ठिई तस्स तत्तिएहिं पक्खेहिं । ऊसासो देवाणं वाससहस्सेहिं आहारो ॥ २३१ ॥ ११५९ ॥ आहारो ऊसासो एसो मे वन्निओ समासेणं । सुहुमंतरायनाहि ! (घणाहि) सुंदरि! अचिरेण कालेण ॥ २३२ ॥ ११६० ॥ एएसिं देवाणं ओही उ विसे-

सिनाम् ॥ २२५ ॥ षोडशभिः सहस्रैः पूर्णैः पञ्चभिः शतैर्भवति । आहारो देवानां मध्यममायुर्धरताम् ॥ २२६ ॥ दश वर्षसहस्राणि जघन्यमायुर्धरन्ति ये देवाः । तेषामपि चाहारश्चतुर्थभक्तेन बोद्धव्यः ॥ २२७ ॥ संवत्सरे अर्धपञ्चसु मासेषु च सुन्दरि! । उच्छ्वासो देवानामनुत्तरविमानवासिनाम् ॥ २२८ ॥ अष्टसु मासेषु सार्धसप्तसु सुतनो! रात्रिन्दिवेषु च । उच्छ्वासो देवानां मध्यममायुर्धरताम् ॥२२९॥ सप्तसु स्तोकेषु पूर्णेषु पूर्णेन्दुसदृशमुखि! । उच्छ्वासो देवानां जघन्यमायुर्धरताम् ॥ २३० ॥ यति सागरोपमाणि यस्य स्थितिस्तस्य ततिभिः पक्षैः । उच्छ्वासो देवानां वर्षसहस्रैराहारः ॥ २३१ ॥ आहार उच्छ्वास एष मया वर्णितः समासेन । सूक्ष्मान्तरायनाभे! सुन्दरि! अचिरेण कालेन ॥ २३२ ॥ एतेषां देवानामवधिस्तु विशेषतस्तु यो यस्य । तं सुन्दरि! वर्णयिष्याम्यहं यथाक्रमं आनुपूर्व्या ॥ २३३ ॥

च. स १६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ||२३३||

दीप अनुक्रम [२३३]

प्रकीर्णकदशके ९ देवेन्द्रस्तवे ॥ ९१ ॥

सओ उ जो जस्स । तं सुंदरि! वण्णेऽहं अहक्कमं आणुपुव्वीए ॥ २३३ ॥ ११६१ ॥ सोहम्मीसाण पढमं दुयं च सणंकुमारमाहिंदा । तयं च बंभलंतग सुक्कसहस्सारय चउत्थिं ॥ २३४॥ ११६२ ॥ आणयपाणयकप्पे देवा पासंति पंचमिं पुढविं । तं चेव आरणच्चुय ओहियनाणेण पासंति ॥ २३५ ॥ ११६३ ॥ छट्ठिं हिट्ठिममज्झिमगेविज्जा सत्तमिं च उवरिल्ला । संभिन्नलोगनालिं पासंति अणुत्तरा देवा ॥ २३६ ॥ ११६४ ॥ संखिज्जजोयणा खलु देवाणं अद्धसागरे ऊणे । तेण परमसंखिज्जा जहन्नयं पन्नवीसं तु ॥ २३७ ॥ ११६५ ॥ तेण परमसंखिज्जा तिरियं दीवा य सागरा चेव । बहुयरयं उवरिमया उड्ढं तु सकप्पथूभाइं ॥ २३८ ॥ ११६६ ॥ नेरइयदेवतित्थंकरा य ओहिस्सऽबाहिरा हुंति । पासंति सवओ खलु सेसा देसेण पासंति ॥ २३९ ॥ ११६७ ॥ ओहिन्नाणे विसओ एसो मे वण्णिओ समासेणं । बाहल्लं उच्चत्तं विमाणवन्नं पुणो वुच्छं ॥ २४० ॥ ११६८ ॥ सत्तावीसं

सौधर्मेशानाः प्रथमां द्वितीयां च सनत्कुमारमाहेन्द्राः । तृतीयां च ब्रह्मलान्तकाः शुक्रसहस्रारकाश्च चतुर्थीम् ॥ २३४ ॥ आनतप्राणतकल्पयोर्देवाः पश्यन्ति पञ्चमीं पृथ्वीम् । तामेवारणाच्युता अवधिज्ञानेन पश्यन्ति ॥ २३५ ॥ षष्ठीं अधस्तनमध्यमग्रैवेयकाः सप्तमीं चोपरितनाः । संपूर्णलोकनालिकां पश्यन्त्यनुत्तरा देवाः ॥ २३६ ॥ देवानामूनेऽर्धसागरोपमे आयुषि संख्येययोजनानि । ततः परमसंख्येयानि जघन्यतः पञ्चविंशतिं (पश्यन्ति) ॥ २३७ ॥ ततः परेऽसंख्येया द्वीपाः सागराश्चैव तिर्यक् । उपरितना बहुकं ऊर्ध्वं तु स्वकल्पस्तूपान् ॥ २३८ ॥ नैरयिकदेवतीर्थंकराश्चावधेरबाह्या भवन्ति । पश्यन्ति सर्वतः खलु शेषा देशेन पश्यन्ति ॥ २३९ ॥ अवधिज्ञाने विषय एष मया वर्णितः समासेन । बाहल्यं उच्चत्वं विमानवर्णं पुनर्वक्ष्ये ॥ २४० ॥ सप्तविंशतिर्योजनशतानि पृथ्वीनां तयोः

वैमानिकानामवधिः

॥ ९१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ||२४१||

दीप अनुक्रम [२४१]

जोयणसयाइं पुढवीण ताण [होइ] बाहल्लं । सोहम्मीसाणेसुं रयणविचित्ता य सा पुढवी ॥ २४१ ॥ ११६९ ॥ तत्थ विमाणा बहुविहा पासायपगइवेइयारम्मा । वेरुलियथूभियागा रयणामयदामलंकारा ॥ २४२ ॥ ११७० ॥ केइत्थऽसियविमाणा अंजणधाउसरिसा सभावेणं । अद्दयरिट्ठसवण्णा जत्थावासा सुरगणाणं ॥ २४३ ॥ ॥ ११७१ ॥ केइ य हरियविमाणा मेयगधाऊसरिसा सभावेणं । मोरग्गीवसवण्णा जत्थावासा सुरगणाणं ॥ २४४ ॥ ११७२ ॥ दीवसिहासरिसवण्णिणत्थ केई जासुमणसूरसरिसवन्ना । हिंगुलुयधाउवण्णा जत्थावासा सुरगणाणं ॥ २४५ ॥ ११७३ ॥ कोरिंटधाउवण्णिणत्थ केई फुल्लकणियारसरिसवण्णा य । हालिद्दभेयवण्णा जत्थावासा सुरगणाणं ॥ २४६ ॥ ११७४ ॥ अविउत्तमल्लदामा निम्मलगाया सुगंधनीसासा । सव्वे अवट्ठियवया सयंपभा अणिमिसच्छा य ॥ २४७ ॥ ११७५ ॥ बावत्तरिकलापंडिया उ देवा हवंति सव्वेऽवि । भवसं-

बाहल्यम् । सौधर्मेशानयोः रत्नविचित्रा च सा पृथ्वी ॥ २४१ ॥ तत्र विमानानि बहुविधानि प्रासादप्रकृतिवेदिकारम्याणि । वैडूर्यस्तूपिकानि रत्नमयदामालङ्काराणि ॥ २४२ ॥ कानिचिदत्र कृष्णानि विमानानि अञ्जनधातुसदृशानि स्वभावेन । आर्द्रकरिष्टसवर्णानि यत्रावासाः सुरगणानाम् ॥ २४३ ॥ कानिचिच्च हरितानि विमानानि मेदकधातुसदृशानि स्वभावेन । मयूरग्रीवसवर्णानि यत्रावासाः सुरगणानाम् ॥ २४४ ॥ दीपशिखासदृशवर्णान्यत्र कानिचित् जपासूरसदृग्वर्णानि । हिंगुलकधातुवर्णानि यत्रावासाः सुरगणानाम् ॥ २४५ ॥ कोरण्टधातुवर्णान्यत्र कानिचित् विकसितकर्णिकारसदृशवर्णानि । हारिद्रभेदवर्णानि यत्रावासाः सुरगणानाम् ॥ २४६ ॥ अवियुक्तमाल्यदामानो निर्मलगात्राः सुगन्धिनिःश्वासाः । सर्वेऽवस्थितवयसः स्वयंप्रभा अनिमेषाक्षाश्च ॥२४७॥ द्वासप्ततिकलापण्डितास्तु देवा भवन्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

---------- मूलं [२४८]----------

प्रत
सूत्रांक
||२४८||

दीप
अनुक्रम
[२४८]

प्रकीर्णकद-शके ९ दे-वेन्द्रस्तवे ॥ ९२ ॥

कमणे तेसिं पडिवाओ होइ नायव्वो ॥ २४८ ॥ ११७६ ॥ कल्लाणफलविवागा सच्छंदविउव्वियाभरणधारी । आभरणवसणरहिया हवंति साभावियसरीरा ॥ २४९ ॥ ११७७ ॥ वत्तुलसरिसवरूवा देवा इक्कम्मि ठिइविसेसम्मि । पच्चग्गऽहीणमहिमा ओगाहणवण्णपरिमाणा ॥ २५० ॥ ११७८ ॥ किण्हा नीला लोहिय हालिद्दा सुक्किला विरायंति । पंचसए उविद्धा पासाया तेसु कप्पेसु ॥ २५१ ॥ ११७९ ॥ तत्थासणा बहुविहा सयणिज्जा मणिभत्तिसयविचित्ता । विरइयवित्थडभूसा रयणामयदामलंकारा ॥ २५२ ॥ ११८० ॥ छवीस जोयणसयाइं पुढवीणं ताण होइ बाहल्लं । सणंकुमारमाहिंदे रयणविचित्ता य सा पुढवी ॥ २५३ ॥ ११८१ ॥ तत्थ य नीला लोहिय हालिद्दा सुक्किला विरायंति । छच्च सए उविद्धा पासाया तेसु कप्पेसु ॥ २५४ ॥ ११८२ ॥ तत्थ विमाणा बहुविहा० (२४२) ॥२५५॥११८३॥ पण्णावीसं जोअणसयाइं पुढवीण होइ बाहल्लं। बंभयलंतय-

वैमानिक-देवप्रासा-दादिवर्ण-नम्

सर्वेऽपि । भवसंक्रमणे तेषां प्रतिपातो भवति ज्ञातव्यः ॥ २४८ ॥ कल्याणफलविपाकाः स्वच्छन्दविकुर्विताभरणधारिणः । आभरणवसनरहिता भवन्ति स्वाभाविकशरीराः ॥ २४९ ॥ वृत्तसर्षपरूपा देवा एकस्मिन् स्थितिविशेषे । प्रत्यग्रा अहीनमहिमावगाहवर्णपरिणामाः ॥ २५० ॥ कृष्णा नीला लोहिता हारिद्राः शुक्लाः विराजन्ते । पंच शतान्युद्विद्धाः प्रासादास्तेषु कल्पेषु ॥ २५१ ॥ तत्रासनानि बहुविधानि शयनीयानि मणिभक्तिशतविचित्राणि । विरचितविस्तृतभूषाणि रत्नमयदामालंकाराणि ॥ २५२ ॥ षड्विंशतिर्योजनशतानि पृथ्वीनां तयोः भवति बाहल्यम् । सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः रत्नविचित्रा च सा पृथ्वी ॥ २५३ ॥ तत्र च नीला लोहिता हारिद्राः शुक्ला विराजन्ते । षट् शतान्युद्विद्धाः प्रासादाः तेषु कल्पेषु ॥ २५४ ॥ तत्र विमानानि बहुविधानि० ॥ २५५ ॥ पंचविंशतिर्योजनानि पृथ्वीनां भवति

॥ ९२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ||२५६||

दीप अनुक्रम [२५६]

कप्पे रयणविचित्ता य सा पुढवी ॥ २५६ ॥ ११८४ ॥ तत्थ विमाणा बहुविहा० ॥ २५७ ॥ ११८५ ॥ लोहिय-हालिद्दा पुण सुक्किलवण्णा य ते विरायंति । सत्तसए उविद्धा पासाया तेसु कप्पेसु ॥ २५८ ॥ ११८६ ॥ चउ-वीसं जोयणसयाइं पुढवीण होइ बाहल्लं । सुक्के य सहस्सारे रयणविचित्ता य सा पुढवी ॥ २५९ ॥ ११८७ ॥ तत्थ विमाण बहुविहा० ॥ २६० ॥ ११८८ ॥ हालिद्दभेयवण्णा सुक्किलवण्णा य ते विरायंति । अट्ठ य ते उ-विद्धा पासाया तेसु कप्पेसुं ॥ २६१ ॥ ११८९॥ तत्थासणा बहुविहा० ॥ २६२ ॥ ११९० ॥ तेवीसं जोयणसयाइं पुढवीणं [उण] तासिं होइ बाहल्लं । आणयपाणयकप्पे आरणच्चुए [रयण]विचित्ता उ सा पुढवी ॥ २६३ ॥ ॥ ११९१ ॥ तत्थ विमाणा बहुविहा० ॥ २६४ ॥ ११९२ ॥ संखंकसन्निकासा सव्वे दगरयतुसारसिरिवण्णा । नव य सए उविद्धा पासाया तेसु कप्पेसुं ॥ २६५ ॥ ११९३ ॥ बावीसं जोयणसयाइं पुढवीणं तासिं होइ

बाहल्यं । ब्रह्मलान्तककल्पयो रत्नविचित्रा च सा पृथ्वी ॥ २५६ ॥ तत्र विमानानि० ॥ २५७ ॥ लोहिता हारिद्राः पुनः शुक्लवर्णा-स्ते विराजन्ते । सप्त शतान्युद्विद्धाः प्रासादास्तेषु कल्पेषु ॥ २५८ ॥ चतुर्विंशतिर्योजनशतानि पृथ्व्या भवति बाहल्यम् । शुक्रसहस्रारयोः रत्नविचित्रा च सा पृथ्वी ॥ २५९ ॥ तत्र विमानानि बहुविधानि० ॥ २६० ॥ हारिद्रभेदवर्णाः शुक्लवर्णाश्च ते विराजन्ते । अष्टौ च योजनशतान्युद्विद्धाः प्रासादास्तयोः कल्पयोः ॥ २६१ ॥ तत्रासनानि बहुविधानि० ॥ २६२ ॥ त्रयोविंशतिर्योजनशतानि पृथ्वीनां तासां पुनर्भवति बाहल्यम् । आनतप्राणतकल्पयोरारणाच्युतयोश्च रत्नविचित्रा तु सा पृथ्वी ॥२६३॥ तत्र विमानानि बहुविधानि० ॥ २६४ ॥ शङ्खाङ्कसन्निकाशाः सर्वे दकरजस्तुषारसदृग्वर्णाः । नव च शतान्युद्विद्धाः प्रासादास्तयोः कल्पयोः ॥२६५॥ द्वाविंशतिर्योजनशतानि पृथ्वीनां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

---------- मूलं [२६६]----------

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र - [३२], प्रकीर्णकसूत्र - [०९] "देवेन्द्रस्तव" मूलं एवं संस्कृतछाया

प्रत सूत्रांक ||२६६||

दीप अनुक्रम [२६६]

प्रकीर्णकदशके ९ देवेन्दस्तवे ॥ ९३ ॥

बाहुल्लं । गेविज्जविमाणेसु रयणविचित्ता उ सा पुढवी ॥ २६६ ॥ ११९४ ॥ तत्थ विमाणा बहुविहा० ॥ २६७ ॥ ॥ ११९५ ॥ संखंकसन्निकासा सव्वे दगरयतुसारसरिवण्णा । दस य सए उविद्धा पासाया ते विरायंति ॥ २६८ ॥ ११९६ ॥ एगवीस जोयणसयाइं पुढवीणं तेसि होइ बाहल्लं । पंचसु अणुत्तरेसुं रयणविचित्ता य सा पुढवी ॥ २६९ ॥ ११९७ ॥ तत्थ विमाणा बहुविहा० ॥ २७० ॥ ११९८ ॥ संखंकसन्निकासा सव्वे दगरयतुसारसरिवण्णा । इक्कारसउविद्धा पासाया ते विरायंति ॥ २७१ ॥ ११९९ ॥ तत्थासणा बहुविहा सयणिज्जा मणिभत्तिसयविचित्ता । विरइयवित्थडदूसा य रयणामयदामलंकारा ॥ २७२ ॥ १२०० ॥ सव्वट्ठविमाणस्स उ सव्वुवरिल्लाउ थूभियंताओ । बारसहिं जोअणेहिं इसिपब्भारा तओ पुढवी ॥ २७३ ॥ १२०१ ॥ निम्मलदगरयवण्णा तुसारगोखीरफेणसरिवण्णा । भणिया उ जिणवरेहिं उत्ताणयछत्तसंठाणा ॥ २७४ ॥ १२०२ ॥

तासां भवति बाहल्यम् । ग्रैवेयकविमानेषु रत्नविचित्रा तु सा पृथ्वी ॥ २६६ ॥ तत्र विमानानि बहुविधानि० ॥ २६७ ॥ शङ्खाङ्कसंनिकाशाः सर्वे दकरजस्तुषारसदृग्वर्णाः । दश च शतान्युद्विद्धाः प्रासादास्ते विराजन्ते ॥ २६८ ॥ एकविंशतिर्योजनशतानि पृथ्वीनां तासां भवति बाहल्यम् । पंचस्वनुत्तरेषु रत्नविचित्रा च सा पृथ्वी ॥ २६९ ॥ तत्र विमानानि बहुविधानि० ॥ २७० ॥ शंखांकसंनिकाशाः सर्वे दकरजस्तुषारसदृग्वर्णाः । एकादश शतान्युद्विद्धाः प्रासादास्ते विराजन्ते ॥ २७१ ॥ तत्रासनानि बहुविधानि शयनीयानि मणिभक्तिशतविचित्राणि । विरचितविस्तृतदूष्याणि रत्नमयदामालंकाराणि च ॥ २७२ ॥ सर्वार्थसिद्धविमानस्य सर्वोपरितनात् स्तूपिकान्तात् । ततो द्वादशसु योजनेषु ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी ॥ २७३ ॥ निर्मलदकरजोवर्णा तुषारगोक्षीरफेनसदृग्वर्णा । भणिता तु जिनवरैरुत्तानक-

वैमानिकदेवप्रासादादिवर्णनम्

॥ ९३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ ईषत्-प्राग्भारापृथ्वी एवं सिद्ध-अधिकार: आरभ्यते

---------- मूलं [२७५]----------

प्रत सूत्रांक ||२७५||

दीप अनुक्रम [२७५]

पणयालीसं आयामवित्थडा होइ सयसहस्साइं । तं तिउणं सविसेसं परीरओ होइ बोद्धव्वो ॥ २७५ ॥ १२०३॥
एगा जोयणकोडी बायालीसं च सयसहस्साइं । तीसं चेव सहस्सा दो अ सया अउणपन्नासा ॥ २७६ ॥
॥ १२०४ ॥ खित्तद्धयविच्छिन्ना अट्ठेव य जोयणाणि बाहल्लं । परिहायमाणी चरिमंते मच्छियपत्ताउ तणुय-
यरी ॥ २७७ ॥ १२०५ ॥ संखंकसन्निकासा नामेण सुदंसणा अमोहा य । अज्जुणसुवण्णयमई उत्ताणयछत्त-
संठाणा ॥ २७८ ॥ १२०६ ॥ ईसीपब्भाराए सीआए जोअणंमि लोगंतो । तस्सुवरिमम्मि भाए सोलसमे
सिद्धमोगाढे ॥ २७९ ॥ १२०७ ॥ कहिं पडिहया सिद्धा?, कहिं सिद्धा पइट्ठिया ? । कहिं बोंदिं चइत्ताणं, कत्थ
गंतूण सिज्झई ! ॥ २८० ॥ १२०८ ॥ अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया । इहं बोंदिं चइत्ताणं,
तत्थ गंतूण सिज्झई ॥ २८१ ॥ १२०९ ॥ जं संठाणं तु इहं भवं चयंतस्स चरमसमयम्मि । आसी य पए-

---

च्छत्रसंस्थाना ॥२७४॥ पंचचत्वारिंशत्सहस्राणि आयामविस्ताराभ्यां भवन्ति । तत्त्रिगुणानि सविशेषाणि परिरयो भवति बोद्धव्यः ॥२७५॥
एका योजनानां कोटी द्वाचत्वारिंशच्च शतसहस्राणि । त्रिंशच्चैव सहस्राणि द्वे च शते एकोनपंचाशत् ॥२७६॥ क्षेत्रार्धकेऽष्ट योजनानि या-
वत् बाहल्यमष्ट योजनानि । परिहीयमाना चरमान्तेषु मक्षिकापत्रात् तनुतरा ॥ २७७ ॥ शंखांकसन्निकाशा नाम्ना सुदर्शना अमोघा च ।
अर्जुनसुवर्णमयी उत्तानकच्छत्रसंस्थिता ॥ २७८ ॥ ईषत्प्राग्भारायाः सीतापराभिधानायाः योजने लोकान्तः । तस्योपरितनभागे षोडशे
सिद्धा अवगाढाः ॥ २७९ ॥ केन सिद्धाः प्रतिहताः क्व सिद्धाः प्रतिष्ठिताः । क्व बोन्दिं त्यक्त्वा क्व गत्वा सिद्ध्यन्ति ? ॥ २८० ॥ अलोकेन
प्रतिहताः सिद्धा लोकाग्रे च प्रतिष्ठिताः । इह बोन्दिं त्यक्त्वा तत्र गत्वा सिध्यंति ॥ २८१ ॥ यत् संस्थानं तु इह भवं त्यजतश्चरमसमये ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

---------- मूलं [२८२]----------

प्रत सूत्रांक ||२८२||

दीप अनुक्रम [२८२]

प्रकीर्णकदशके ९ देवेन्द्रस्तवे ॥ ९४ ॥

सघणं तं संठाणं तहिं तस्स ॥ २८२ ॥ १२१० ॥ दीहं वा हस्सं वा जं संठाणं हविज्ज चरमभवे । तत्तो तिभागहीणा सिद्धाणोगाहणा भणिया ॥ २८३ ॥ १२११ ॥ तिन्नि सया छासट्ठा धणुत्तिभागो अ होइ बोद्धव्वो । एसा खलु सिद्धाणं उक्कोसोगाहणा भणिया ॥ २८४ ॥ १२१२ ॥ चत्तारि य रयणीओ रयणी तिभागूणिया य बोद्धव्वा । एसा खलु सिद्धाणं मज्झिमओगाहणा भणिया ॥ २८५ ॥ १२१३ ॥ इक्का य होइ रयणी अट्ठेव य अंगुलाइं साहीया । एसा खलु सिद्धाणं जहण्णओगाहणा भणिया ॥ २८६ ॥ १२१४ ॥ ओगाहणाइ सिद्धा भवत्तिभागेण हुंति परिहीणा । संठाणमणित्थंत्थं जरामरणविप्पमुक्काणं ॥ २८७ ॥ १२१५ ॥ जत्थ य एगो सिद्धो तत्थ अणंता भवक्खयविमुक्का । अन्नुन्नसमोगाढा पुट्ठा सव्वे अलोगंते ॥ २८८ ॥ १२१६ ॥ असरीरा जीवघणा उवउत्ता दंसणे य नाणे य । सागारमणागारं लक्खणमेयं तु सिद्धाणं ॥ २८९ ॥ १२१७ ॥

आसीच्च प्रदेशघनं तत् संस्थानं तत्र तस्य ॥२८२॥ दीर्घं वा ह्रस्वं वा यत् प्रमाणं भवेत् चरमभवे । ततस्त्रिभागहीना सिद्धानामवगाहना भणिता ॥ २८३ ॥ त्रीणि शतानि षट्षष्टिर्धनुषस्तृतीयो भागश्च भवति बोद्धव्यः । एषा खलु सिद्धानामुत्कृष्टावगाहना भणिता ॥ २८४ ॥ चतस्रो रत्नयो रत्निस्त्रिभागोना च बोद्धव्या । एषा खलु सिद्धानां मध्यमाऽवगाहना भणिता ॥ २८५ ॥ एका च भवति रत्निरष्टावेवांगुलानि साधिकानि । एषा खलु सिद्धानां जघन्यिकाऽवगाहना भणिता ॥ २८६ ॥ अवगाहनायां सिद्धा भवत्रिभागेन भवन्ति परिहीनाः । संस्थानमनित्थंस्थं जरामरणविप्रमुक्तानाम् ॥ २८७ ॥ यत्रैकः सिद्धस्तत्रानन्ता भवक्षयविप्रमुक्ताः । अन्योऽन्यसमवगाढाः स्पृष्टाः सर्वेऽलोकान्ते ॥ २८८ ॥ अशरीरा जीवघना उपयुक्ता दर्शने च ज्ञाने च । साकारत्वमनाकारत्वं च लक्षणमेतत्तु सिद्धानाम्

सिद्धानां स्थानावगाहादि

॥ ९४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

---------- मूलं [२९०]----------

प्रत सूत्रांक ||२९०||

दीप अनुक्रम [२९०]

फुसइ अणंते सिद्धे सव्वपएसेहिं णियमसो सिद्धो। तेवि असंखिज्जगुणा देसपएसेहिं जे पुट्ठा ॥२९०॥ १२१८॥
केवलनाणुवउत्ता जाणंती सव्वभावगुणभावे। पासंति सव्वओ खलु केवलदिट्ठीअणंताहिं ॥ २९१ ॥ १२१९ ॥
नाणंमि दंसणम्मि य इत्तो एगयरम्मि उवउत्ता । सव्वस्स केवलिस्सा जुगवं दो नत्थि उवओगा ॥ २९२ ॥
॥ १२२० ॥ सुरगणसुहं समत्तं सव्वद्धापिंडियं अणंतगुणं । नवि पावइ मुत्तिसुहं णंताहिं वग्गवग्गूहिं
॥ २९३ ॥ १२२१ ॥ नवि अत्थि माणुसाणं तं सुक्खं नवि य सव्वदेवाणं। जं सिद्धाणं सुक्खं अव्वावाहं उवग-
याणं ॥ २९४ ॥ १२२२ ॥ सिद्धस्स सुहो रासी सव्वद्धापिंडिओ जइ हविज्जा । णंतगुणवग्गुभइओ सव्वागासे
न माइज्जा ॥ २९५ ॥ १२२३ ॥ जह नाम कोइ मिच्छो नयरगुणे बहुविहे वियाणंतो। न चएइ परिकहेउं
उवमाए तहिं असंतीए ॥ २९६ ॥ १२२४ ॥ इअ सिद्धाणं सुक्खं अणोवमं नत्थि तस्स ओवम्मं। किंचि वि-

॥ २८९ ॥ स्पृशति अनन्तान् सिद्धान् सर्वप्रदेशैर्नियमतः सिद्धः । ये देशप्रदेशैः स्पृष्टास्तेऽप्यसंख्येयगुणाः ॥ २९० ॥ केवलज्ञानोप-
युक्ता जानन्ति सर्वपदार्थगुणभावान् । पश्यन्ति सर्वतः खलु केवलदृष्टिभिरनन्ताभिः ॥ २९१ ॥ ज्ञाने दर्शने चानयोरेकतरस्मिन् उप-
युक्ताः । सर्वस्य केवलिनो युगपद् द्वौ न स्त उपयोगौ ॥ २९२ ॥ सुरगणसुखं समस्तं सर्वाद्धापिंडितं अनन्तगुणं । नैव प्राप्नोति मुक्ति-
सुखं अनन्तैर्वर्गवर्गैः ॥ २९३ ॥ नैवास्ति मनुष्याणां तत् सौख्यं नैव च सर्वदेवानां । यत् सिद्धानां सौख्यमव्याबाधत्वमुपगतानाम्
सिद्धस्य सुखराशिः सर्वाद्धापिण्डितो यदि भवेत् । अनन्तगुणवर्गभक्तः सर्वाकाशे न मायात् ॥ २९५ ॥ यथा नाम कश्चिन्म्लेच्छो
नगरगुणान् बहुविधान् विजानानः । न शक्नोति परिकथयितुं तत्रासत्यामुपमायाम् ॥ २९६ ॥ इति सिद्धानां सौख्यमनुपमं नास्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगम (३२)	"देवेन्द्रस्तव" - प्रकीर्णकसूत्र-९ (मूलं+संस्कृतछाया) ---------- मूलं [२९७]----------
प्रत सूत्रांक ॥२९७॥ दीप अनुक्रम [२९७]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र - [३२], प्रकीर्णकसूत्र - [०९] "देवेन्द्रस्तव" मूलं एवं संस्कृतछाया

प्रकीर्णकदशके ९ देवेन्द्रस्तवे ॥ ९५ ॥

सेसेणित्तो सारिक्खमिणं सुणह वुच्छं ॥२९७॥ १२२५ ॥ जह सव्वकामगुणियं पुरिसो भोत्तूण भोयणं कोई । तण्हाछुहाविमुक्को अच्छिज्ज जहा अमियतित्तो ॥ २९८ ॥ १२२६ ॥ इय सव्वकालतित्ता अउलं निव्वाणमुवगया सिद्धा । सासयमव्वाबाहं चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥ २९९ ॥ १२२७ ॥ सिद्धत्ति य बुद्धत्ति य पारगयत्ति य परंपरगयत्ति । उम्मुक्ककम्मकवया अजरा अमरा असंगा य ॥ ३०० ॥ १२२८ ॥ निच्छिन्नसव्वदुक्खा जाइजरामरणबंधणविमुक्का । सासयमव्वाबाहं अणुहवंति सुहं सया कालं ॥३०१॥ १२२९ ॥ सुरगणइड्ढिसमग्गा सव्वद्धापिंडियं अणंतगुणा । नवि पावइ जिणइड्ढिं णंतेहिंवि वग्गवग्गेहिं ॥ ३०२ ॥ १२३० ॥ भवणवइवाणमंतरजोइसवासी विमाणवासी य । सविड्ढीपरियरिया अरहंते वंदया हुंति ॥ ३०३ ॥ १२३१ ॥ भवणवइवाणमंतरजोइसवासी विमाणवासी य । इसिवालियमयमहिया करिंति महिमं जिणवराणं ॥ ३०४ ॥ १२३२ ॥

तस्यौपम्यं । किंचिद्विशेषेणातः सादृश्यमिदं शृणुत वक्ष्ये ॥ २९७ ॥ यथा सर्वकामगुणितं भोजनं भुक्त्वा कश्चित् पुरुषः । तृषा क्षुधा विमुक्त आसीत यथाऽमृततृप्तः ॥ २९८ ॥ इति (एवं) सर्वकालतृप्ताः अतुल्यं निर्वाणमुपगताः सिद्धाः । शाश्वतमव्याबाधं सुखिनः सुखं प्राप्तास्तिष्ठन्ति ॥ २९९ ॥ सिद्ध इति च बुद्ध इति च पारगत इति च परंपरागत इति । उन्मुक्तकर्मकवचा अजरा अमरा असंगाश्च ॥ ३०० ॥ व्युच्छिन्नसर्वदुःखा जातिजरामरणबन्धनविमुक्ताः । शाश्वतमव्याबाधत्वमनुभवन्ति सदाकालम् ॥ ३०१ ॥ सुरगणर्द्धिः समग्रा सर्वाद्धापिंडिता अनन्तगुणा । नैव प्राप्नोति जिनर्द्धिं अनन्तैर्वर्गवर्गैरपि ॥ ३०२ ॥ भवनपतयो व्यन्तरा ज्योतिष्कवासिनो विमानवासिनश्च । सर्वर्द्धिपरिवृता जिनानां वंदका भवन्ति (वन्दनाय यांति) ॥ ३०३ ॥ भवनपतयो व्यन्तरा ज्योतिष्कवासिनो विमा-

सिद्धानां सौख्यम्

॥ ९५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ जिनऋद्धि दर्शयित्वा, पश्चात् उपसंहार: क्रियते

प्रत
सूत्रांक
||३०५||

दीप
अनुक्रम
[३०५]

इसिवालियस्स भद्दं सुरवरथयकारयस्स वीरस्स। जेहिं सया थुव्वंता सव्वे इंदा पवरकित्ती ॥३०५॥१२३३॥ इसिवा०
तेसिं सुरासुरगुरू सिद्धा सिद्धिं उवणमंतु ॥ ३०६ ॥१२३४॥ भोमेज्जवणयराणं जोइसियाणं विमाणवासीणं ।
देवनिकाया णं (णंदउ) थवो सहस्सं [समत्तो] अपरिसेसो ॥ ३०७॥ १२३५॥ देविंदत्थयपइण्णं सस्मत्तं ॥ ९॥

नवासिनश्च । ऋषिपालितमतमहिताः कुर्वन्ति महिमानं जिनेन्द्राणाम् ॥ ३०४ ॥ ऋषिपालिताय भद्रं वीरस्य सुरवरस्तवकारकाय ।
येन सदा स्तुतिकारकाः सर्वे इन्द्राः परिकीर्त्तिताः (प्रवरकीर्त्तिताः) ॥ ३०५ ॥ ऋषिपालिताय भद्रं वीरस्य सुरवरस्य स्तवकारकाय ।
तेषां सुरासुराणां गुरवः सिद्धाः सिद्धिमुपनयन्तु ॥३०६॥ भौमेयव्यन्तराणां ज्योतिष्काणां विमानवासिनां । देवनिकायानां स्तवः [सङ्ख्या]
अपरिशेषः समाप्तः ॥ ३०७ ॥ इति देवेन्द्रस्तवः ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनिश्री दीपरत्नसागरेण पुन: संपादित: (आगमसूत्र ३२)

"देवेन्द्रस्तव" परिसमाप्त:

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

32

पूज्य आगमोध्धारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधित: संपादितश्च

"देवेन्द्रस्तव-प्रकीर्णकसूत्र" [मूलं एवं छाया:]

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित:

"देवेन्द्रस्तव" मूलं एवं संस्कृतछाया:" नामेण

परिसमाप्त:

Remember it's a Net Publications of 'jain_e_library's'